चौथी दुनिया

हिंदी का पहला साप्ताहिक अखबार

www.chauthiduniya.com

सिर्फ़ पैसे की घपलेबाज़ी ही नहीं यह इंसानियत पर काला धब्बा है

पेज 3

ख़त्म हो जाएंगे छोटे दुकानदार

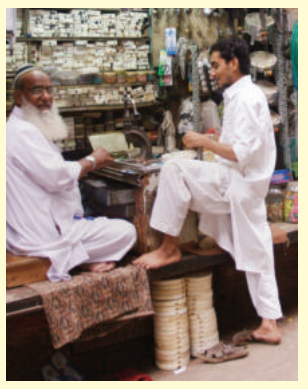

पेज 5

नेपाल : राजशाही की आहट सुनाई दे रही है

पेज 11

साई की महिमा

पेज 12

मूल्य 5 रुपये

दिल्ली, 16 अगस्त–22 अगस्त 2010

नीतीश कुमार का

आत्मविश्वास या अहंकार

नीतीश कुमार ने पार्टी के नेताओं, कार्यकर्ताओं या फिर जनता की बातों को सुनना बंद कर दिया है. किसी भी योजना या नीति को तय करने में जनप्रतिनिधियों की हिस्सेदारी नहीं के बराबर रह गई है. पार्टी के नेता लाचार हैं. उनका आरोप है कि अवसरवादी नौकरशाहों ने मुख्यमंत्री को अपने मायाजाल में फंसा रखा है, वे हमेशा नीतीश कुमार के इर्द-गिर्द घूमते रहते हैं.

मनीष कुमार

प्रजातंत्र में सरकार का यह दायित्व होता है कि शासन और प्रशासन संविधान के मुताबिक़ चले. अगर कोई सरकार यह काम करती है तो वह किसी इनाम की हक़दार नहीं है. यह तो उसका कर्तव्य है. बिहार में राष्ट्रीय जनता दल के 15 साल के कुशासन के बाद जब नीतीश कुमार की सरकार बनी थी, तब लोगों को यह उम्मीद बंधी थी कि राज्य में दूरगामी परिवर्तन होंगे. नौकरी के लिए बिहार के लोगों को दूसरे राज्यों में भटकना नहीं पड़ेगा. उद्योग व बहुराष्ट्रीय कंपनियों के लिए दरवाजे खुल जाएंगे. किसानों की मुसीबतें ख़त्म हो जाएंगी. मज़दूर ख़ुशहाल हो जाएंगे. लेकिन बिहार में 15 साल के कुशासन और आज के हालात में फ़र्क़ सिर्फ़ इतना है कि जहां सरकार नहीं थी, वहां सरकार नज़र आने लगी. राज्य में इससे ज़्यादा कुछ नहीं हुआ. बिहार के लोग भोले-भाले हैं. आम जनता अच्छी सड़क बना देने को ही सुशासन समझती है और सरकार के मुखिया नीतीश कुमार के अहंकार के सामने नतमस्तक है. नीतीश कुमार बिहार की ज़रूरत हैं, ऐसा कई लोग मानते हैं. यह बात भी सही है कि वे बिना प्रचार किए चुनाव जीतने की ताक़त रखते हैं. लेकिन बिहार की जनता नीतीश से एक स्टेट्समैन बनने की उम्मीद रखती है. ऐसी उम्मीद करना ग़लत भी नहीं है, क्योंकि उनकी राजनीतिक पृष्ठभूमि ही ऐसी है. नीतीश कुमार ने शुरुआती दौर में ऐसे संकेत भी दिए, लेकिन समय के साथ-साथ उनकी प्राथमिकताएं बदल गईं. नीतीश पहले नेताओं से दूर हुए, फिर समर्थकों से और अब जनता से भी दूरी बना ली है. इसके अलावा नीतीश कुमार ने अपने शासनकाल में कभी भी विपक्ष को साथ लेकर चलने की कोशिश नहीं की. उनके पास बहुमत है. उनकी छवि अच्छी है, इसी एहसास ने नीतीश कुमार को निरंकुश बना दिया है. वह अहंकारी हो गए हैं. जिस नीतीश को लोग एक स्टेट्समैन की तरह देखना चाहते थे, वे एक साधारण मुख्यमंत्री साबित हुए हैं.

प्रजातंत्र में जनता ही नेता को चुनती है, मंत्री और मुख्यमंत्री बनाती है. अच्छा नेता वह होता है जो जनता के क़रीब हो. नीतीश कुमार बिहार के ऐसे मुख्यमंत्री हैं जिनसे जनता तो दूर, कोई मंत्री, विधायक या सांसद भी सीधे नहीं मिल सकता है. उन्हें इसके लिए अर्ज़ी देनी पड़ती है. नीतीश कुमार के यहां काम करने वाले लोग दिन में दो बार मिलने वालों की सूची तैयार करते हैं. पता चला है कि रोज़ सुबह नाश्ते के वक़्त नीतीश उस सूची को देखते हैं और पेंसिल से निशान लगाते हैं. जिन नामों के दाहिनी ओर निशान लग जाता है, उन्हें मिलने की अनुमति मिलती है और जिन नामों के बाईं ओर निशान लगता है, उनसे सिर्फ़ फोन पर बातें होती हैं. सूची में मौजूद ज़्यादातर नामों के आगे नीतीश पेंसिल नहीं चलाते हैं. वे न तो मिलने वालों की सूची में होते हैं और न ही फोन से बात करने वालों में. यहां ग़ौर करने वाली बात यह है कि अगर कोई मंत्री या विधायक आज मिलने की अर्ज़ी देता है, तो उसका नंबर एक दो सप्ताह के बाद आता है, कभी-कभी तो एक महीने के बाद. मुख्यमंत्री और विधायकों के बीच फ़ासला कितना बढ़ गया है, इस पर एक घटना बताते हैं. बिहार के एक एमएलए हैं रामेश्वर चौरसिया. कभी नीतीश कुमार के काफी क़रीब थे. उन्हें अपने क्षेत्र के विकास को लेकर मुख्यमंत्री से कुछ बातें करनी थी. उन्होंने अपना नाम लिखवा दिया, लेकिन उनका नंबर नहीं आया. उन्होंने दो-तीन बार अपना नाम लिखवाया. क़रीब एक महीने बाद अचानक उनके मोबाइल पर नीतीश कुमार का फोन आया. नीतीश ने पूछा, कोई काम था. रामेश्वर चौरसिया ने कहा, नहीं. फिर नीतीश कुमार ने पूछा कि लिस्ट में आपका नाम लिखा था. तब रामेश्वर चौरसिया को याद आया कि उन्होंने एक महीने पहले मिलने की अर्ज़ी दी थी. इस घटना से दो बातें सामने आती हैं. एक तो इससे मुख्यमंत्री और विधायकों के बीच की दूरी का पता चलता है और दूसरा यह कि हालात इस क़दर ख़राब हो गए हैं कि विधायकों को मुख्यमंत्री से वक़्त नहीं मिलने का अब कोई अफ़सोस भी नहीं होता है. विधायकों ने यह मान लिया है कि नीतीश बदल गए हैं.

जब नीतीश कुमार मुख्यमंत्री बने थे, तब वह ऐसे नहीं थे. पार्टी के नेता व कार्यकर्ता बताते हैं कि नीतीश में सत्ता का ज़रा भी रौब नहीं था. गपशप दरबार लगा करता था, जिसमें पार्टी के छोटे-बड़े कार्यकर्ता और सरकार से जुड़े लोग शामिल होते थे. इसमें साधारण लोग भी शरीक़ होते थे, कोई रोकटोक नहीं था. हंसी-मज़ाक का दौर भी चलता था. उसी दौरान की एक घटना है. नीतीश वहां बैठे लोगों को बता रहे थे कि नौकरी के लिए बिहार के लोग कहीं भी चले जाएंगे. नौकरी के लिए परीक्षा अगर चांद पर भी हो तो वहां भी बिहार के छात्र नज़र आ जाएंगे. इस पर नागरिक परिषद के अध्यक्ष अनिल पाठक ने कहा कि इंग्लैंड में 75 फ़ीसदी डॉक्टर बिहार के हैं. इस पर नीतीश ने चुटकी ली, कहा- पाठक जी, यह आपको कैसे मालूम है. बिहारी डॉक्टरों की गिनती करने आप क्या लंदन गए थे. दरबार में बैठे लोग हंस पड़े. अनिल पाठक ने फ़ौरन जवाब दिया कि आप भी तो चांद पर नहीं गए. दरबार में ठहाके की गूंज फैल गई. नीतीश भी हंस पड़े थे. आज नीतीश के आसपास कार्यकर्ताओं के ठहाके नहीं सुनाई देते. मुख्यमंत्री जी और उनके चाहने वालों के बीच फ़ासला बढ़ गया है. अब मुख्यमंत्री निवास में इस तरह के दरबार नहीं लगते. लोग वहां जाने से डरते हैं, पता नहीं कौन सिपाही या अधिकारी उनकी इज़्ज़त उतार दे.

ऐसा नहीं है कि नीतीश कुमार के पास लोगों से मिलने का वक़्त नहीं है. विडंबना यह है कि जनता के प्रतिनिधियों को मुख्यमंत्री से मिलने के लिए पापड़ बेलना पड़ता है, लेकिन राज्य के नौकरशाहों के लिए नीतीश का दरबार हर वक़्त खुला रहता है. इन अधिकारियों के लिए मुख्यमंत्री के पास वक़्त ही वक़्त है. उनके लिए वे चौबीसों घंटे मौजूद रहते हैं. नीतीश कुमार ने पार्टी के नेताओं, कार्यकर्ताओं या फिर जनता की बातों को सुनना बंद कर दिया है. किसी भी योजना या नीति को तय करने में जनप्रतिनिधियों की हिस्सेदारी नहीं के बराबर रह गई है. पार्टी के नेता लाचार हैं. उनका आरोप है कि अवसरवादी नौकरशाहों ने मुख्यमंत्री को अपने मायाजाल में फंसा रखा है, वे हमेशा नीतीश कुमार के इर्द-गिर्द घूमते रहते हैं. नीतीश पार्टी के नेताओं और जनता की मदद से सरकार नहीं चला रहे हैं. असलियत यह है कि बिहार में कुछ गिने-चुने अधिकारी ही सारे फ़ैसले ले रहे हैं. यही वजह है कि बिहार में लालफीताशाही का बोलबाला है और नौकरशाह निरंकुश हो गए हैं. बिहार में प्रजातंत्र का यह कैसा रूप है, प्रजातांत्रिक मूल्यों का कैसा चेहरा है कि जनता के प्रतिनिधियों व उनके परिजनों की पुलिस अधिकारी पिटाई कर देते हैं और सरकार का मुखिया कोई भी कार्रवाई करने से डर जाता है. अश्विनी चौबे भागलपुर के विधायक हैं. बिहार के बड़े नेताओं में इनकी गिनती होती है. पटना में एक दिन उनके परिजनों ने मौर्यलोक के पास ऐसी जगह पर गाड़ी लगा दी, जहां नो-पार्किंग का बोर्ड लगा था. पुलिस ने उनकी गाड़ी वहां से हटा दी. विधायक के बेटे के साथ पुलिस की कहासुनी होने लगी जो थोड़ी देर में गर्मागर्म बहस में तब्दील हो गई और पुलिस ने अश्विनी चौबे के बेटे की पिटाई कर दी. उसे छुड़ाने उनकी पत्नी आगे आईं तो पुलिस वालों ने उन्हें भी पीट दिया. अश्विनी चौबे मुख्यमंत्री को फोन करते रह गए. पुलिस अधिकारियों के ख़िलाफ़ कार्रवाई की उम्मीद करते रह गए, लेकिन नीतीश कुमार ने तीन दिनों तक उनके फोन का जवाब तक नहीं दिया. बिहार के एक और विधायक पीतांबर पासवान को समस्तीपुर में एक कार्यक्रम में एक एसडीओ ने धक्का दे दिया और बेइज़्ज़त किया. इस मामले ने काफ़ी तूल पकड़ा, विधानसभा में भी उठा. एक साल तक पीतांबर पासवान विधानसभा नहीं आए, लेकिन सरकार के मुखिया ने इस अधिकारी के ख़िलाफ़ कोई कार्रवाई नहीं की.

बिहार के विधायकों और सांसदों की यही शिकायत है कि नीतीश कुमार की सारी दरियादिली नौकरशाहों के लिए है, लेकिन जैसे ही किसी जनप्रतिनिधि से जुड़ा विषय आता है तो वह हिटलर की तरह पेश आते हैं. सरकार में शामिल नेता भी दबी ज़ुबान से कहते हैं कि नीतीश अब अधिकारियों की सलाह पर फ़ैसले लेते हैं. यह बात भी सही है कि जनता में मुख्यमंत्री जी और सरकार की छवि अच्छी है. नीतीश जी को शायद इसी बात का अहंकार है. विधायकों को भी लगता है कि नीतीश के साथ रह कर ही वे विधानसभा में फिर से चुनकर आ सकते हैं, इसलिए उनके फ़ैसलों पर सवाल उठाने की हिम्मत नहीं करते. जिन लोगों ने नीतीश के ख़िलाफ़ बोलने की कोशिश की, उनका क्या हश्र हुआ यह देखकर पार्टी के दूसरे नेता सकते में हैं. नीतीश कुमार पर नौकरशाहों का ऐसा प्रभाव है कि उनकी सलाह पर वे मंत्रियों के विभाग तक बदल देते हैं. जो मंत्री अच्छा काम कर रहा होता है, उसका भी विभाग बदल दिया जाता है. चाहे इसका ख़ामियाज़ा जनता को क्यों न भुगतना पड़े. एक बार उन्होंने स्वास्थ्य मंत्री चंद्रमोहन राय, गन्ना मंत्री नीतीश मिश्रा, सूचना जनसंपर्क मंत्री अर्जुन राय, ऊर्जा मंत्री विजेंद्र यादव और ग्रामीण कार्य मंत्री नरेंद्र नारायण यादव का विभाग एकसाथ ही बदल दिया. इस घटना के बाद से फिर किसी मंत्री ने नीतीश के सामने ज़ुबान खोलने की हिम्मत नहीं की. हाल में ही ललन सिंह ने पार्टी में बग़ावत की. ऐसा महौल बन गया था कि लगा कि कहीं पार्टी ही न टूट जाए. फिर महिला आरक्षण बिल को लेकर शरद यादव के साथ खटपट हुई. लेकिन नीतीश के अहंकार के सामने इन सब ने घुटने टेक दिए. अब आलम यह है कि नीतीश की स्थिति और भी मज़बूत हो गई है. वह पहले से ज़्यादा अंहकारी व निरंकुश हो गए हैं.

नीतीश कुमार अपने शुरुआती दिनों में जनता और नेताओं के काफी क़रीब थे. जब वे मुख्यमंत्री बने थे, तब कार्यकर्ता दरबार लगता था. हर मंगलवार को पार्टी ऑफिस में कार्यकर्ताओं से सीधे मिलते थे. उनकी समस्याओं और जनता की परेशानियों के बारे में जानकारी लेते थे. पार्टी कार्यालय में एक पॉलिटिकल सेक्रेटरी

(शेष पृष्ठ 2 पर)

> **बिहार के विधायकों और सांसदों की यही शिकायत है कि नीतीश कुमार की सारी दरियादिली नौकरशाहों के लिए है, लेकिन जैसे ही किसी जनप्रतिनिधि से जुड़ा विषय आता है तो वह हिटलर की तरह पेश आते हैं. सरकार में शामिल नेता भी दबी ज़ुबान से कहते हैं कि नीतीश अब अधिकारियों की सलाह पर फ़ैसले लेते हैं. यह बात भी सही है कि जनता में मुख्यमंत्री जी और सरकार की छवि अच्छी है.**

चुनौतीपूर्ण काम के लिए अधिकारियों को तैयार करना आसान नहीं है, लेकिन सरकार उन्हें आकर्षक वेतन देने का प्रस्ताव कर रही है.

दिल्ली, 16 अगस्त–22 अगस्त 2010
चौथी दुनिया

दिल्ली का बाबू

दिलीप चेरियन

बाबुओं को लगा झटका

सरकार ने एक ही झटके में तीन आईएएस अधिकारियों को जबरन सेवानिवृत्ति देने का फ़ैसला लिया है. इसकी वजह उनका ख़राब सर्विस रिकॉर्ड है. यदि यह प्रक्रिया आगे भी जारी रही तो इसे एक अच्छी शुरुआत माना जा सकता है. हिमाचल प्रदेश के मुख्यमंत्री प्रेम कुमार धूमल ने राज्य के आईएएस अधिकारी डॉ. देश दीपक (1983 बैच) एवं विजेंदर कुमार (1987 बैच) को सेवामुक्त करने का फरमान जारी कर दिया है. तीसरी आईएएस अधिकारी हैं तमिलनाडु कैडर की शालिनी वशिष्ठ, जिनका बोरिया-बिस्तर बांध दिया गया है. सत्ता के गलियारों में पैठ रखने वालों की मानें तो दोनों राज्य सरकारों ने कार्मिक एवं प्रशिक्षण मंत्रालय की अनुमति मिलने के बाद ही इन अधिकारियों को सेवानिवृत्ति देने का फ़ैसला लिया है. हालांकि इस संबंध में आख़िरी निर्णय कैबिनेट की नियुक्ति कमेटी द्वारा लिया गया, जिसने हिमाचल एवं तमिलनाडु सरकारों की रिपोर्ट को मान लिया. इस निर्णय से अक्षम नौकरशाह सहम गए हैं, क्योंकि यही रवैया रहा तो वे अपनी कुर्सियों को सुरक्षित नहीं मान सकते.

प्रमोशन मिला, लेकिन देर से

देश का सबसे बड़ा राज्य उत्तर प्रदेश लंबे समय से नौकरशाहों की कमी की समस्या झेल रहा है. अब छह साल के लंबे अंतराल के बाद सरकार राज्य सेवा के 100 अधिकारियों को आईएएस कैडर में पदोन्नत करने की तैयारी में है. सरकार के इस फ़ैसले में देरी की वजह कैडरों की समीक्षा में विलंब और राज्य सेवा के कतिपय अधिकारियों द्वारा सेंट्रल एडमिनिस्ट्रेटिव ट्रिब्यूनल में दायर याचिकाएं हैं. ख़बरों के मुताबिक़, विभागीय पदोन्नति समिति, जिसमें मुख्य सचिव अतुल कुमार एवं राज्य कार्मिक मंत्रालय के प्रतिनिधि भी शामिल हैं, ने तमाम प्रक्रियाएं पूरी कर ली हैं और जल्द ही इस बाबत अधिसूचना जारी कर दी जाएगी. हैरानी की बात यह है कि राज्य सेवा के कई अधिकारी आईएएस कैडर में पदोन्नत किए जाने से ख़ुश नहीं हैं, क्योंकि वे सेवानिवृत्ति की कगार पर पहुंच चुके हैं. कम से कम 10 नौकरशाह पहले ही प्रधान सचिव के वेतनमान में पहुंच चुके हैं, जबकि 65 अधिकारी सचिव स्तर के वेतनमान में हैं. इसमें कोई शक नहीं कि पदोन्नति का यह फ़ैसला इन बाबुओं के लिए काफी देर से लिया गया निर्णय है.

काबुल से बुलावा

सरकार संयुक्त राष्ट्र के एक कार्यक्रम के तहत अपने कुछ नौकरशाहों को प्रतिनियुक्ति पर युद्ध प्रभावित अफ़ग़ानिस्तान भेजने की तैयारी में है. उक्त अधिकारी वहां जाकर अफ़ग़ानी नौकरशाहों को प्रशिक्षित करेंगे. इस चुनौतीपूर्ण काम के लिए अधिकारियों को तैयार करना आसान नहीं है, लेकिन सरकार उन्हें आकर्षक वेतन देने का प्रस्ताव कर रही है. ऐसे अधिकारियों को कैबिनेट सचिव से चार गुना ज़्यादा वेतन देने का प्रलोभन दिया जा रहा है. प्रतिनियुक्ति की अवधि क़रीब एक साल है तो अपना बैंक बैलेंस बढ़ाने के लिए अधिकारियों के पास यह अच्छा मौक़ा है. इच्छुक अधिकारियों से आवेदन आमंत्रित करने के लिए सरकार द्वारा जारी अधिसूचना ने नौकरशाही में हलचल पैदा कर दी है. लेकिन केवल वही लोग इसके लिए आवेदन कर सकते हैं, जिनके पास कम से कम दस साल का अनुभव है. अब देखने वाली बात यह है कि आर्थिक प्रलोभन इन अधिकारियों को युद्ध से तबाह हो चुके अफ़ग़ानिस्तान जाने के लिए तैयार कर पाता है या नहीं.

dilipcherian@gmail.com

साउथ ब्लॉक

अशोक को ऊर्जा मंत्रालय

गृह मंत्रालय में संयुक्त सचिव अशोक लवासा को ऊर्जा मंत्रालय में भेज दिया गया है. हाल ही में अशोक लवासा को अतिरिक्त सचिव की सूची में शामिल किया गया था. अशोक 1980 बैच और हिमाचल प्रदेश कैडर के आईएएस अधिकारी हैं.

देवराज की जगह सुबोध

आईएएस अधिकारी सुबोध यादव को गृह मामलों के मंत्रालय में उप सचिव के रूप में नियुक्त किया गया है. इस पद पर पहले आईडीएसई अधिकारी देव राज थे. सुभाष यादव 1999 बैच के आईएएस अधिकारी हैं. ग़ौरतलब है कि यादव पहले क़ानून एवं न्याय मंत्री के प्रधान सचिव भी रह चुके हैं.

पी के मिश्रा इस्पात मंत्रालय गए

तमाम अटकलों के बाद अब यह साफ़ हो गया है कि इस्पात मंत्रालय में नए सचिव के रूप में पी के मिश्रा की नियुक्ति होगी. फ़िलहाल आईएएस अधिकारी मिश्रा विशेष सचिव के रूप में डीओपीटी में सेवारत हैं. वर्तमान सचिव अतुल चतुर्वेदी अगस्त महीने के आख़िरी दिन अपने कार्यालय से विदा लेंगे.

ग़ैर आईएएस एनएचएआई में

आईएएस अधिकारी बृजेश्वर सिंह की जगह एनएचएआई का नया चेयरमैन कौन होगा, इस पर अटकलें तेज़ हो गई हैं. सिंह का कार्यकाल 31 अगस्त को ख़त्म होने वाला है. एनएचएआई सूत्रों के मुताबिक़, एक गैर आईएएस अधिकारी सीएमडी का पदभार ग्रहण कर सकता है.

त्रिपाठी कैबिनेट सचिवालय में

अल्पसंख्यक मामलों के मंत्रालय में संयुक्त सचिव उपेंद्र त्रिपाठी को कैबिनेट सचिवालय में भेज दिया गया है. इस पद पर पहले भानु प्रताप शर्मा को नियुक्त किया गया था, बाद में उनकी नियुक्ति निरस्त कर दी गई थी. आईएएस अधिकारी त्रिपाठी 1980 बैच और कर्नाटक कैडर से हैं.

नीतीश कुमार का आत्मविश्वास या अहंकार

पृष्ठ 1 का शेष

होता था जो कार्यकर्ताओं को मुख्यमंत्री से मिलाने का काम करता था. समय के साथ मिलना-जुलना कम होता गया और धीरे-धीरे पूरी तरह बंद हो गया. आज हालत यह है कि नीतीश इतनी खरी-खोटी सुनाते हैं कि नेता और कार्यकर्ता सही बात कहने से डरते हैं. चुनाव नज़दीक है. नीतीश राज्य के अलग-अलग इलाक़ों का दौरा कर रहे हैं. वहां जब कार्यकर्ता यह कहते हैं कि अधिकारी मनमानी कर रहे हैं, सरकार की छवि ख़राब हो रही है तो नीतीश का जवाब होता है कि आप लोग भ्रम में न रहें, सब ठीक चल रहा है और सरकार की छवि के बारे में नाहक चिंतित न हों. सरकार के मुखिया जब ऐसी बात करते हैं, तो सरकार के समर्थक के पास चुप रहने के अलावा और कोई विकल्प नहीं रह जाता है. नीतीश का दरवाजा पहले आम जनता के लिए भी खुला था. हर सोमवार को जनता दरबार लगता था. सुबह-सुबह अपनी समस्याओं को लेकर लोग उनसे मिलते थे. नीतीश उन्हें निराश भी नहीं करते थे. उसी वक़्त वह फोन कर मामले का निपटारा करते थे. अब मुख्यमंत्री जी का तेवर बदल गया है, प्राथमिकताएं बदल गई हैं. इसलिए जनता दरबार का चरित्र भी बदल गया है. जनता दरबार से जनता ग़ायब हो गई. अब पटना में जनता दरबार लगना भी बंद हो गया है. वह जिस दिन जहां होते हैं, खानापूर्ति के लिए दरबार लग जाता है. लोग मिलते हैं, आवेदन देते हैं और मुख्यमंत्री जी आवेदन डीएम को सौंप कर भूल जाते हैं.

नीतीश कुमार को यह अहंकार सा हो गया है कि उनके कार्यकाल में सरकार जनता के मनमुताबिक़ काम कर रही है. बिहार की मीडिया सरकार के जनसंपर्क विभाग की तरह काम कर रही है. यहां तक की दिल्ली के अंग्रेजी अख़बारों में पूरे-पूरे पेज ख़रीद कर बिहार सरकार अपने काम को बढ़ा-चढ़ा कर प्रचारित कर रही है. अधिकारी अपनी पीठ थपथपा रहे हैं. नीतीश के आसपास जो लोग हैं, वे भी सही ख़बर नहीं देते हैं. यह बात समझ में नहीं आती है, कोई तर्क फिट नहीं बैठता है कि नीतीश कुमार जैसे परिपक्व ज़मीनी नेता को यह कैसे लग सकता है कि सरकार का काम सिर्फ़ सड़क बनाना है. इसमे कोई शक़ नहीं है कि बिहार में सड़क बनाया गया है. बिहार में 90 हज़ार किलोमीटर सड़क हैं. पिछले पांच सालों में सिर्फ़ 18 हज़ार किलोमीटर का निर्माण हुआ है. मतलब यह कि अभी लगभग 80 हज़ार किलोमीटर सड़क बनना बाक़ी है. बिहार में लालू यादव के पंद्रह साल के शासनकाल में सड़कों की हालत बहुत ही ख़राब थी. नीतीश कुमार के शासनकाल में जो थोड़े-बहुत सड़क बने हैं, उसे देखकर बिहार की भोली जनता को यही लगता है कि पूरे राज्य में सड़कों का पुनरुद्धार हो गया है.

बिहार के अधिकारी यह दावा करते हैं कि राज्य में क़ानून-व्यवस्था को दुरुस्त किया गया है. यह सच्चाई है कि अपराध में कमी आई है, रंगदारी में कमी हुई है, जिस तरह पहले दिन-दहाड़े डक़ैती और गुंडागर्दी का आलम था, उसमें कमी आई है. इसकी सराहना बिहार की जनता तो कर रही है, लेकिन यह तो सरकार का मूल दायित्व है. बिहार के अधिकारी इतने बेपरवाह हो गए हैं कि यह भी भूल गए हैं कि क़ानून-व्यवस्था को ठीक रखना तो सरकार का काम ही होता है. जो सरकार यह नहीं कर सकती, उसे सरकार में रहने का कोई हक़ नहीं है. हमारा संविधान तो यही कहता है. नीतीश कुमार को तो यह जवाब देना चाहिए कि अपराध पूरी तरह ख़त्म क्यों नहीं हुए, किडनैपिंग क्यों चल रही है, अभी भी हत्या और बलात्कार की वारदातें क्यों हो रही हैं.

इस सरकार से पहले सरकार न के बराबर थी. नीतीश कुमार के समय में सिर्फ़ इतना अंतर आया है कि सरकार नज़र आ रही है, लेकिन समस्याएं जस की तस हैं. नीतीश के शासनकाल में आज बिहार की जनता बिजली पानी की समस्या से जूझ रही है. स्वास्थ्य सेवाओं में पैसा तो लगाया गया है, लेकिन ज़मीन पर कुछ नहीं हो पाया है. शिक्षा का स्तर चौपट हो चुका है. बिहार में जिस वर्ग के पास पैसा है, वह दूसरे शहरों में पढ़ने और नौकरी के लिए चला जाता है. लेकिन जो लोग ग़रीब हैं, उनकी मुश्किलें बढ़ गई हैं. बिहार में स्कूल में ड्रेस बांटने का फ़ैसला लिया गया. अधिकारियों की वजह से भीषण घपलेबाज़ी हुई. ख़बर आई कि एक विद्यार्थी का नाम कई स्कूलों में दर्ज है. नौकरशाहों के भरोसे सरकार चलाने का ख़ामियाज़ा तो भुगतना ही पड़ता है. आज बिहार में ग़रीब विद्यार्थियों को अच्छे स्कूल से इंटर करना ही मुश्किल हो गया है. अधिकारियों ने न जाने किस दिमाग़ से विश्वविद्यालय में इंटर की पढ़ाई बंद कर दी. अब इंटर करने के लिए सिर्फ़ प्राइवेट स्कूल बचे हैं, जो विद्यार्थियों से इतनी फीस लेते हैं कि ग़रीब छात्र इसमें पढ़ने की सोच भी नहीं सकते. पटना साइंस कॉलेज में इंटरमीडिएट की पढ़ाई बंद है. बिहार सरकार ने यह वादा किया था कि एक साल बाद सारे स्कूलों में इंटर की पढ़ाई होगी, लेकिन अब तक कुछ नहीं हुआ है. सरकार से जब ग़रीब छात्रों के भविष्य के बारे में पूछा जाता है तो दो टूक जवाब मिलता है, झेलना पड़ेगा. इसमें कोई नई बात नहीं है कि हर सरकार अपने हिसाब से योजना बनाती है, नीतियों पर काम करती है. लेकिन इस दौरान यह चिंता भी करती है कि उनकी नीतियों की वजह से किसी का नुक़सान नहीं हो. यहां तो ग़रीब बच्चों के भविष्य से खिलवाड़ हो रहा है और सरकार का जवाब ऐसा है जो शायद किसी हिटलरशाही में भी नहीं दिया जाता होगा.

नीतीश कुमार के मुख्यमंत्री बनने से लोगों में उम्मीद जगी थी. नीतीश ईमानदार हैं, साफ़ छवि के हैं, लोगों को अपने जैसे लगते हैं, इसलिए जब अधिकारी अपना काम ठीक से नहीं करते हैं तो धरना प्रदर्शन कर लोग अपनी समस्याओं को मुख्यमंत्री तक पहुंचाने पटना पहुंचते हैं. लेकिन नीतीश कुमार के शासनकाल में बिहार में एक नई परंपरा की शुरुआत हुई है. अपने प्रजातांत्रिक अधिकारों को इस्तेमाल करते हुए कोई धरना प्रदर्शन करता है तो बिहार की पुलिस बेदर्दी से डंडा चलाती है. पटना में हर बड़े विरोध प्रदर्शन के दौरान पुलिस ने लाठी चार्ज किया है. चाहे होमगार्ड के जवान हों या शिक्षा मित्र, इन लोगों ने जब भी प्रदर्शन किया, इनकी भरपूर पिटाई हुई. बिहार में विरोध कर रहे उर्दू और संस्कृत के शिक्षकों को भी दौड़ा-दौड़ा कर पीटा गया. स्वास्थ्य सेविका और पंचायत प्रतिनिधि, जो ग्रामीण और सुदूर इलाक़ों में काम करते हैं, उनके शरीर पर भी पुलिस का डंडा टूटा. ये लोग अपनी नौकरी और वेतन की समस्याओं को लेकर गुहार करने पटना आए थे, पर आंखों में आंसू, शरीर पर डंडों के निशान और सरकार को कोसते हुए वापस गए. बिहार के अन्य ज़िलों में बाढ़ पीड़ितों पर भी लाठी चार्ज की घटनाएं हुई हैं. पटना में मीडिया और टीवी कैमरों के डर से पुलिस व अधिकारियों का अत्याचार थोड़ा कम भी होता है. अगर विरोध प्रदर्शन छोटे इलाक़े में हो, पानी-बिजली की समस्या को लेकर कहीं लोग रोड जाम कर दें या सरकार के ख़िलाफ़ नारेबाज़ी करें, तो पुलिस फ़ौरन अंग्रेज़ी हुकूमत की याद दिला देती है. जमकर लाठियां चलती हैं और प्रदर्शनकारियों को जेल भेज दिया जाता है. महंगाई के मुद्दे को लेकर कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ इंडिया (माले) के विरोध प्रदर्शन को बलपूर्वक कुचला गया, अब तो आलम यह है कि विधानसभा में विधायकों को भी नहीं छोड़ा जाता है. पता नहीं बिहार में विरोध प्रदर्शन कब से ग़ैरक़ानूनी हो गए हैं जबकि नीतीश कुमार ख़ुद ऐसी राजनीति की पैदाइश हैं, जिसका आधार ही विरोध प्रदर्शन है. देखना तो यह है कि जनता के विरोध प्रदर्शन पर लाठी चलाने वाले कैसे ख़ुद को जयप्रकाश नारायण का अनुयायी मानते हैं.

नीतीश कुमार की गठबंधन सरकार बहुमत में है. बहुमत का उपयोग सरकार ने किस तरह किया, इसे समझने के लिए यह जानना ज़रूरी है कि सरकार ने किस तरह संवैधानिक कर्तव्यों और परंपराओं को निभाया. पांच साल की नीतीश सरकार के दौरान सबसे खटकने वाली बात विधानसभा के उपाध्यक्ष का चुनाव है. संसदीय प्रणाली में यह लगभग अनकहा क़ानून है कि सदन का उपाध्यक्ष मुख्य विपक्षी पार्टी का होता है. लालू यादव की राष्ट्रीय जनता दल ने इस पद के लिए श्याम रजक को चुना. वे महादलित वर्ग से हैं. नीतीश कुमार को श्याम रजक के नाम पर आपत्ति थी, इसलिए उन्होंने चुनाव तक नहीं होने दिया. नीतीश कुमार ने बहुमत का ऐसा धौंस दिखाया कि लालू यादव को थक-हार कर श्याम रजक की जगह शकुनी चौधरी का नाम आगे करना पड़ा. प्रजातंत्र की एक कमी है, पलक झपकते बहुमत निरंकुश शासन में तब्दील हो जाता है. बिहार के विधान परिषद में ऐसा ही हुआ. नीतीश कुमार ने सभापति और उपसभापति के पद को अपने पास रख लिया. उन्होंने तीन साल तक चुनाव ही नहीं होने दिया. उनकी जिद की वजह से कार्यकारी सभापति ही इस पद पर विराजमान रहे.

बच्चे जिद करते हैं, योगी हठ करते हैं लेकिन जब कोई सर्वशक्तिमान यह काम करता है तो उसे अंहकार कहा जाता है. नीतीश कुमार प्रजातांत्रिक आंदोलन, विचारधारा और मूल्यों से उपजे नेता हैं. बिहार ही नहीं, पूरे देश की जनता को नीतीश कुमार से अपेक्षाएं हैं. वह उन चंद नेताओं में शामिल हैं, जिन्हें देश की जनता ईमानदार मानती है. दूसरे राज्यों के लोग भी उन्हें देश के भावी प्रधानमंत्री के रूप में देखते हैं. लेकिन बिहार में उनके पांच साल के शासनकाल को देखकर अफ़सोस होता है. नीतीश कुमार के शासनकाल का सबसे बड़ा धब्बा यह है कि उन्हें सरकार चलाने में विपक्ष का साथ नहीं मिला. विधानसभा में जब भी कोई अहम फ़ैसला लिया गया, उसमें विपक्ष का वॉकआउट शामिल था. नीतीश जी को यह दर्द हमेशा रहेगा. मुख्यमंत्री जी यह भी जानते हैं कि उन्होंने इन पांच सालों में एक भी ऐसा काम नहीं किया, जिसके दूरगामी सामाजिक व राजनैतिक परिणाम हों. नीतीश कुमार की दूसरी सबसे बड़ी कमी यह है कि उन्होंने पार्टी में नेताओं की दूसरी पंक्ति बनने ही नहीं दी. उल्टे जिन लोगों ने दूसरी पंक्ति के नेताओं में अपनी जगह बनाने की कोशिश की, उन्हें पार्टी से निकलने पर मजबूर कर दिया. नीतीश राजनीति में परिवारवाद के समर्थक नहीं हैं, फिर भी बिहार में जदयू के पास नीतीश के अलावा पार्टी को नेतृत्व देने वाला कोई नया या युवा चेहरा नज़र नहीं आता है. बड़े नेता की यह निशानी ही नहीं कर्तव्य भी है कि वह अपने पीछे नए नेताओं की एक कतार छोड़ जाता है. नीतीश कुमार कहते हैं कि हम चादर तान कर सोएंगे, तब भी डेढ़ सौ से ज़्यादा सीटें जीत जाएंगे. हम सालों भर पढ़ने वाले विद्यार्थी हैं, सिर्फ़ परीक्षा के समय ही नहीं पढ़ते. इसलिए चुनाव जीतने की चिंता नहीं है. नीतीश जी चुनाव जीत जाएं, यह बिहार के लिए अच्छा है. लेकिन देश की जनता की उम्मीदों पर खरा उतरना नीतीश कुमार का दायित्व है. अगर वह ऐसा नहीं कर पाते हैं तो हमेशा एक साधारण मुख्यमंत्री के रूप में ही याद किए जाएंगे. साधारण मुख्यमंत्री और अच्छे मुख्यमंत्री में फ़र्क होता है, अच्छे और असाधारण मुख्यमंत्री में और फ़र्क होता है. पटना से दिल्ली का रास्ता आसान नहीं है, नीतीश जी.

manish@chauthiduniya.com

फोटो– *प्रभात पाण्डेय*

नीतीश कुमार को यह अहंकार सा हो गया है कि उनके कार्यकाल में सरकार जनता के मनमुताबिक़ काम कर रही है. बिहार की मीडिया सरकार के जनसंपर्क विभाग की तरह काम कर रही है. यहां तक की दिल्ली के अंग्रेजी अख़बारों में पूरे-पूरे पेज ख़रीद कर बिहार सरकार अपने काम को बढ़ा-चढ़ा कर प्रचारित कर रही है.

चौथी दुनिया
देश का पहला साप्ताहिक अखबार

वर्ष 2 अंक 23
दिल्ली, 16 अगस्त–22 अगस्त 2010

संपादक
संतोष भारतीय

मैसर्स अंकुश पब्लिकेशंस प्राइवेट लिमिटेड के लिए मुद्रक व प्रकाशक रामपाल सिंह भदौरिया द्वारा जागरण प्रकाशन लिमिटेड डी 210-211 सेक्टर 63, नोएडा उत्तर प्रदेश से मुद्रित एवं के- 2, गैनन, चौधरी बिल्डिंग, कनॉट प्लेस, नई दिल्ली 110001 से प्रकाशित

संपादकीय कार्यालय

के-2, गैनन, चौधरी बिल्डिंग
कनॉट प्लेस, नई दिल्ली 110001
कैंप कार्यालय एफ-2, सेक्टर -11, नोएडा
गौतमबुद्ध नगर उत्तर प्रदेश-201301

फोन न.

संपादकीय 0120-4783999/11-23418962
विज्ञापन + 91 9899815169
प्रसार + 91 9013478398
फैक्स न. 0120-4783950

पृष्ठ-16 (+4)

चौथी दुनिया में छपे सभी लेख अथवा सामग्री पर चौथी दुनिया का कॉपीराइट है. बिना अनुमति के किसी लेख अथवा सामग्री के पुन: प्रकाशन पर क़ानूनी कार्रवाई की जाएगी.

समस्त कानूनी विवादों का क्षेत्राधिकार दिल्ली न्यायालयों के अधीन होगा.

एचएलआरएन की रिपोर्ट में इन मज़दूरों के बारे में जो कुछ लिखा गया है, वह किसी भी संवेदनशील इंसान को एक बार सोचने पर मजबूर करता है.

राष्ट्रमंडल खेल

सिर्फ़ पैसे की घपलेबाज़ी ही नहीं

यह इंसानियत पर काला धब्बा है

सभी फोटो–*प्रभात पाण्डेय*

राष्ट्रमंडल खेल 2010 में भ्रष्टाचार के मामले एक-एक कर सामने आ रहे हैं. ज़्यादातर मामले पैसों से जुड़े हैं, लेकिन इस पूरे खेल का एक दर्दनाक पक्ष भी है. अधिकारियों का क्रूर व्यवहार, जिसने इंसान को जानवर से भी कमतर समझा. उनके अमानवीय चेहरों पर तब भी शिकन नहीं आई, जब राष्ट्रमंडल खेल से जुड़े निर्माण कार्यों के दौरान 49 मज़दूरों की मौत हो गई. किसी को मुआवज़ा तक नहीं मिला. दिल्ली को सुंदर बनाने के लिए लाखों लोगों को बेघर कर दिया गया. एक तरह से ग़रीबों को दिल्ली से भगाने की मुहिम छेड़ दी गई. राष्ट्रमंडल खेल के पीछे चल रहे एक अमानवीय और क्रूर खेल पर रिपोर्ट तैयार की है हाउसिंग एंड लैंड राइट्स नेटवर्क ने.

शशिशेखर

भारत आज विश्व की एक उभरती महाशक्ति है. इसलिए अगर यहां राष्ट्रमंडल खेल हो रहे हैं तो यह ख़ुशी और गर्व की बात है, लेकिन सवाल है कि इस खेल के पीछे जो खेल चल रहा है, वह कितना जायज़ है? खेल के नाम पर ग़रीबों की ज़िंदगी से आख़िर क्यों खेला जा रहा है? मसलन दिल्ली श्रमिक संगठन के मुताबिक़, 2003 से 2008 के बीच दिल्ली में 350 मलिन बस्तियों को ज़बरन उजाड़ दिया गया. इन 350 मलिन बस्तियों में लगभग 3 लाख लोग रहते थे. अपना आशियाना खो चुके परिवारों में से महज़ एक तिहाई का ही पुनर्वास हो पाया. दिल्ली में तक़रीबन 3 लाख स्ट्रीट वेंडर्स हैं, जिनका सामूहिक रूप से सालाना टर्न ओवर 3500 करोड़ रुपये का है. आसानी से अंदाज़ा लगाया जा सकता है कि दिल्ली की अर्थव्यवस्था को मज़बूत बनाने में इन स्ट्रीट वेंडर्स का कितना बड़ा योगदान है. लेकिन फिर भी दिल्ली सरकार इन स्ट्रीट वेंडर्स को यहां नहीं रहने देना चाहती. नई दिल्ली नगर पालिका परिषद चाहती है कि इन अतिक्रमणकारियों (स्ट्रीट वेंडर्स) को बाज़ार से हटा दिया जाए. तभी तो जनवरी 2010 तक दिल्ली नगर निगम (एमसीडी) के लाइसेंस विभाग के पास रेहड़ी-पटरी पर दुकान खोलने के लिए एक लाख से ज़्यादा आवेदन आए, लेकिन एमसीडी ने सिर्फ़ 14 हज़ार लाइसेंस ही जारी किए. जबकि सुप्रीम कोर्ट तक ने अपने कई निर्णयों में स्ट्रीट वेंडिंग पेशे को क़ानूनी ठहराया है. दिल्ली शहर में क़रीब 20 हज़ार ढाबे हैं, जिनमें से 80 फ़ीसदी ढाबों को सरकार ग़ैरक़ानूनी मान चुकी है. ज़ाहिर है, राष्ट्रमंडल खेल के मद्देनज़र दिल्ली सरकार नहीं चाहती कि यहां कोई झुग्गी, स्ट्रीट वेंडर या ग़रीब आदमी विदेशी मेहमानों को दिखे.

ये ग़ैरक़ानूनी ढाबे तो बिना किसी पूर्व सूचना (नोटिस) के हटा देने लायक हैं, क्योंकि इन्हें अतिक्रमण के तौर पर देखा गया है. एमसीडी सिर्फ़ वैसी ही दुकानों को लाइसेंस जारी कर सकता है, जो खाने-पीने की हैं और जिनके पास छत है. हम लोगों को राष्ट्रमंडल खेल से पहले ऐसे सभी अतिक्रमण हटाने के लिए कहा जा चुका है.

दीप माथुर, निदेशक, प्रेस और सूचना, एमसीडी
(एचएलआरएन की रिपोर्ट में प्रकाशित बयान)

लेकिन सरकार की यह सारी कोशिशें सिर्फ़ उसकी असफलता की कहानी ही कहती हैं. 1982 में हुए एशियाड खेलों के बाद से ही दिल्ली में झुग्गी-झोपड़ियों की संख्या में इज़ाफ़ा होने लगा था. उस वक़्त निर्माण कार्य के लिए आए प्रवासी मज़दूर यहीं बस गए, क्योंकि सरकार के पास इन लोगों के लिए न तो कोई नीति थी और न ही कोई योजना. लेकिन दु:ख की बात यह है कि जिन लोगों की मेहनत की बदौलत एशियाड खेलों का सफल आयोजन संभव हो सका था, निर्माण कार्य हुए थे, उन्हीं लोगों को राष्ट्रमंडल खेल के नाम पर दिल्ली से भगाने की साज़िश की जाने लगी. आज दिल्ली में डेढ़ लाख से ज़्यादा लोग बेघर हैं, क्योंकि यहां के सौंदर्यीकरण के नाम पर झुग्गी-झोपड़ियों को तोड़ दिया गया. जब हाईकोर्ट और सुप्रीम कोर्ट ने इस मामले में दख़ल दिया, तब सरकार की नींद खुली. फटाफट अस्थायी आश्रयस्थल बनाए गए. बावजूद इसके सिर्फ़ 4 से 5 फ़ीसदी बेघर लोगों को ही छत नसीब हो सकी. अभी भी 95 फ़ीसदी लोगों के सिर पर छत नहीं है. लेकिन जब बात राष्ट्रमंडल खेल की आई तो इस बार भी दिल्ली को सजाने-संवारने के लिए प्रवासी मज़दूरों की ज़रूरत पड़ी. सरकार अपने पूर्व के अनुभव से कुछ नहीं सीखना चाहती थी. क्या सरकार को अंदेशा नहीं था कि 1982 (एशियाड) का इतिहास फिर से ख़ुद को दोहरा सकता है. यानी इस बात की क्या गारंटी है कि इस बार निर्माण कार्य के लिए जो प्रवासी मज़दूर दिल्ली आएं हैं, वे यहां नहीं बस जाएंगे. बावजूद इसके क़रीब 3 लाख से ज़्यादा मज़दूरों को राष्ट्रमंडल खेल की तैयारी के काम में लगाया गया.

एचएलआरएन की रिपोर्ट में इन मज़दूरों के बारे में जो कुछ लिखा गया है, वह किसी भी संवेदनशील इंसान को एक बार सोचने पर मजबूर करता है. लेकिन ऐसा लगता है कि राष्ट्रमंडल खेल से जुड़े अधिकारियों के लिए इन मज़दूरों और जानवरों में कोई अंतर नहीं था. खेल गांव स्थल पर 10x10 के एक टीनशेड में 10 मज़दूरों को एक साथ रहना पड़ता था. शौचालय की कोई व्यवस्था नहीं थी. इंदिरा गांधी स्टेडियम में 107 मज़दूरों के लिए एक शौचालय था. मज़दूर अपने लिए बनाए गए घरों को मुर्गीखाना कहते थे. एक जनहित याचिका के मुताबिक़, गेम्स साइट पर काम कर रहे मज़दूरों में से अब तक 49 की मौत हो चुकी है. किसी भी परिवार को उसके सदस्य की मौत पर मुआवज़ा नहीं दिया गया. इसके अलावा मज़दूरों को न्यूनतम वेतन भी नहीं दिया जाता था. आठ घंटे काम करने के बदले जहां एक अकुशल मज़दूर के लिए 142 रुपये न्यूनतम वेतन बनता था, वहीं उसे 85 से 100 रुपये दिए जाते थे. यही हाल कुशल कामगारों का भी था. महिला मज़दूरों को तो और भी कम वेतन दिया जाता था. साथ ही वेतन देने में भी देरी की शिक़ायत की बात इस रिपोर्ट में है. मज़दूरों को कोई यात्रा भत्ता भी नहीं दिया जाता था. मज़दूरों से 12 घंटे से ज़्यादा काम लिया गया, क्योंकि आयोजन समिति को डेडलाइन का अनुसरण करना था. मज़दूरों को काम के दौरान कोई सुरक्षा उपकरण मुहैया नहीं कराया गया. सबसे दु:ख की बात यह है कि राष्ट्रमंडल खेल को सफल बनाने के लिए बालश्रम का भी इस्तेमाल किया गया. ज़ाहिर है, यह सब कंस्ट्रक्शन वर्कर्स एक्ट 1996 का उल्लंघन ही था.

बहरहाल यह आयोजन सफल होता है या नहीं, इसका जवाब तो समय आने पर पता चल जाएगा, लेकिन खेल के नाम पर इन ग़रीबों के साथ जो कुछ भी हुआ, उसका भी इतिहास लिखा जाएगा और यह इतिहास का वह काला पन्ना होगा, जिसमें लाखों बेघर लोगों की कहानी होगी. उन मज़दूरों की कहानी होगी, जिन्होंने अपने ख़ून-पसीने से दिल्ली को सुंदर और समृद्ध बनाया. उन लोगों की भी कहानी होगी, जिन्होंने इन मज़दूरों और ग़रीबों की ज़िंदगी को जीते जी नरक बना दिया.

shashishekhar@chauthiduniya.com

मज़दूरों का शोषण

- एक जनहित याचिका के मुताबिक़, गेम्स साइट पर अब तक 49 मज़दूरों की मौत हो चुकी है.
- किसी भी मौत पर मुआवज़ा नहीं दिया गया.
- नहीं मिला मज़दूरों को न्यूनतम वेतन.
- महिला मज़दूरों को कम वेतन मिला.
- वेतन देने में भी देरी की शिक़ायत.
- टेंट में रहना पड़ता था मज़दूरों को.
- आईजी स्टेडियम में 107 मज़दूरों के लिए सिर्फ़ एक शौचालय.
- कोई यात्रा भत्ता भी नहीं दिया गया.
- मज़दूरों ने 12 घंटे से ज़्यादा काम किया.
- मज़दूरों को सुरक्षा उपकरण नहीं दिए गए.
- बालश्रम का भी किया गया इस्तेमाल.
- मज़दूरों का रजिस्ट्रेशन नहीं कराया गया.
- यह कंस्ट्रक्शन वर्कर्स एक्ट का उल्लंघन था.

सिर पर छत नहीं
दिल्ली में स्थिति (2010)

जिनके पास घर नहीं है	1,50,000
सरकारी आश्रय (स्थायी)	19
सरकारी आश्रय (अस्थायी) (न्यायिक हस्तक्षेप से पहले)	8
सरकारी आश्रय (अस्थायी) (अदालती आदेश के बाद)	45
जिन्हें छत मिली (अदालती हस्तक्षेप के बाद)	6000-8000 (4-5%)
जिन्हें छत नहीं मिली (अदालती हस्तक्षेप के बाद)	95%

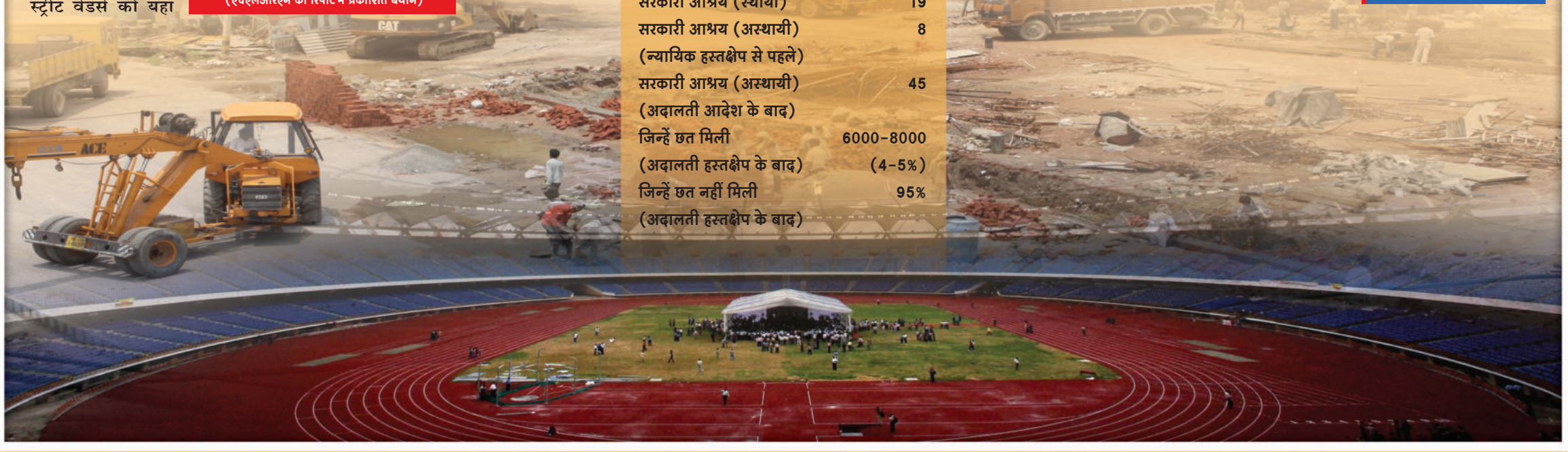

राष्ट्रवादी कांग्रेस पार्टी की महिला इकाई की प्रमुख नीतू सिंह की मानें तो नीतीश सरकार हर मोर्चे पर विफल रही है

हम किसी से कम नहीं

सरोज सिंह

बिहार के चुनावी महाभारत में हर कोई अपनी ताक़त आजमाने सड़कों पर उतर चुका है. रणनीति बनाने का काम ख़त्म कर आमने-सामने की लड़ाई के लिए ताल ठोंकी जा रही है. हर दल आम जनता को यह बताने में जुट गया है कि हमसे बड़ा आपका हितैषी कोई नहीं. इन्हीं तैयारियों में इस बार हर दल की महिला इकाइयों ने भी काफ़ी बढ़-चढ़कर अपनी भूमिका खोजी है और यह कोशिश जारी है कि उनकी पार्टी तो जीते, साथ ही साथ ज़्यादा से ज़्यादा महिलाएं विधानसभा पहुंच जाएं. राजधानी पटना से लेकर सुदूर गांवों तक महिला मोर्चा की नेताओं एवं कार्यकर्ताओं की फ़ौज अपनी-अपनी पार्टी के नारे बुलंद कर रही हैं. राज्यसभा में महिला आरक्षण बिल पारित हो जाने से उन्हें लग रहा है कि अब वक़्त आ गया कि विधानसभा में महिलाओं को उनका वाजिब हक़ मिले. महिलाओं को टिकटों में कितना हिस्सा मिलेगा, इस पर सभी दलों की महिला इकाइयों की अध्यक्षों की राय लगभग एक जैसी है कि 33 प्रतिशत से कम नहीं मांगेंगे, पर इसके साथ वे यह भी कह डालती हैं कि जो मिलेगा, उसे स्वीकार कर चुनावी अखाड़े में कूद पड़ेंगे.

जदयू महिला इकाई की प्रमुख प्रो. ऊषा सिन्हा की मानें तो इस चुनाव में महिलाओं की ताक़त अपना निर्णायक रोल अदा करेगी. पार्टी को मज़बूत करने के सिलसिले में लगभग सभी ज़िलों का दौरा कर चुकीं ऊषा सिन्हा को लगता है कि पिछले चुनाव की तुलना में इस बार महिलाओं में उत्साह कहीं ज़्यादा है. राज्यसभा में महिला बिल पारित हो जाने के बाद से तो महिलाओं को लग रहा है कि प्रदेश में भी उनकी भागीदारी बढ़ने वाली है. यही वजह है कि सभा-सम्मेलनों में उनकी आवाज़ ज़्यादा गूंज रही है. जदयू के राजनीतिक सम्मेलनों में महिला मोर्चा ने बढ़-चढ़कर भाग लिया. ऊषा सिन्हा का दावा है कि लोग नीतीश को पसंद करते हैं, इसलिए अगली सरकार भी जदयू-भाजपा गठबंधन की ही बनेगी. लेकिन लोजपा की महिला इकाई की प्रमुख डॉ. ललिता देवी यादव का कहना है कि बिहार के लोगों ने नीतीश कुमार को अच्छी तरह पहचान लिया है. पिछले पांच सालों में जनता को ठगने वाली यह सरकार अब बस जाने ही वाली है. लोजपा की महिलाएं नीतीश सरकार के घोटालों से जनता को अवगत कराने के लिए दिन-रात गांवों में घूम रही हैं. इस शासन में महिलाओं पर अत्याचार काफ़ी बढ़ा है. ख़ासकर दलित महिलाओं की परेशानी काफ़ी बढ़ गई है. ललिता देवी ने रामविलास पासवान से महिलाओं के लिए ज़्यादा से ज़्यादा टिकट देने की अपील करते हुए घोषणा की कि नीतीश सरकार को उखाड़ फेंकने में लोजपा की महिला इकाई कोई कसर नहीं छोड़ेगी. चुनावी तैयारी के सिलसिले में ललिता देवी अपनी टीम के साथ ज़िलों का दौरा कर रही हैं. जनता का मिजाज़ भांपने की इस कसरत में ललिता देवी इस नतीजे पर पहुंच रही हैं कि बिहार में अगली सरकार लोजपा-राजद गठबंधन की बनने जा रही है. पर बात अगर भाजपा महिला मोर्चा की प्रमुख हेमलता वर्मा की करें तो उन्हें लगता है कि बिहार की जनता एक बार फिर भाजपा-जदयू गठबंधन को मौक़ा देने जा रही है. हेमलता वर्मा कहती हैं कि मैं आपको पूरी ज़िम्मेदारी के साथ बता रही हूं कि बिहार के लोग क्या चाह रहे हैं. उन्होंने कहा कि विकास हमारा प्रमुख मुद्दा रहेगा, क्योंकि बिहार की जनता इसे पसंद करती है. हेमलता वर्मा ने कहा कि भाजपा-जदयू गठबंधन सरकार में महिलाओं को सम्मान मिला, उनके दिलों से भय भागा और आज वे पूरी आज़ादी के साथ अपने कर्तव्यों का निर्वाह कर रही हैं. देर रात तक महिलाएं बाज़ार में घूमें, पांच साल पहले कोई ऐसा सोच भी नहीं सकता था, लेकिन इस सरकार ने भय के माहौल को ख़त्म कर महिलाओं को जीने की आज़ादी दी है. चुनाव के लिए भाजपा से जुड़ी महिलाओं ने कमर कस ली है और उम्मीद है कि इस बार भाजपा की ज़्यादा से ज़्यादा महिला प्रत्याशी चुनाव जीतकर विधानसभा पहुंचेंगी.

राष्ट्रवादी कांग्रेस पार्टी की महिला इकाई की प्रमुख नीतू सिंह की मानें तो नीतीश सरकार हर मोर्चे पर विफल रही है और आगामी चुनाव में जनता जदयू-भाजपा गठबंधन को सबक सिखाने जा रही है. अपनी पार्टी की चुनावी तैयारियों के संबंध में उनका कहना है कि एनसीपी का महिला मोर्चा इस बार पूरे दम-खम के साथ चुनावी अखाड़े में उतरने जा रहा है. हम लोग इस बार दिखा देंगे कि महिलाओं की ताक़त क्या होती है. एनसीपी महिलाओं के मान-सम्मान का पूरा ख्याल रखेगी और कोशिश करेगी कि बिहार की ग़रीब से ग़रीब महिला को भी उसका वाजिब हक़ मिले. कांग्रेस की महिला इकाई की प्रमुख विनीता विजय कहती हैं कि सारे दलों की लड़ाई कांग्रेस के साथ है. बिहार की जनता चाहती है कि यहां कांग्रेस की सरकार बने, ताकि सही मायने में विकास की गाड़ी आगे बढ़ सके. विनीता का मानना है कि कांग्रेस ने जो सम्मान महिलाओं को दिया, उसके बारे में कोई दल सोच भी नहीं सकता है. सोनिया गांधी ने राज्यसभा में महिला बिल को पारित कराके यह दिखा दिया कि कांग्रेस ही महिलाओं की सच्ची हितैषी है. पटना में प्रदेश भर की महिलाओं के सफल सम्मेलन से उत्साहित विनीता विजय का दावा है कि इस बार राज्य में कांग्रेस की सरकार बनेगी और पार्टी की महिला इकाई इसमें अहम रोल अदा करेगी. विनीता विजय का कहना है कि प्रदेश के लोग नीतीश की सच्चाई जान चुके हैं, इसलिए अब वे उन्हें दोबारा मौक़ा नहीं देने जा रहे. पूरे बिहार में सोनिया एवं राहुल गांधी के प्रति ज़बरदस्त आकर्षण है. लोग उन्हें देखना और सुनना चाह रहे हैं. राजद की महिला इकाई की प्रमुख भारती श्रीवास्तव का कहना है कि कांग्रेस चुनाव में वोटकटवा की भूमिका निभाएगी. कांग्रेस के नेता हवा में बात कर रहे हैं. जहां तक लोकप्रियता का सवाल है तो आज भी इस मामले में लालू प्रसाद को कोई नहीं छू सकता. बिहार के लोग नीतीश के क्रियाकलापों से अपने को ठगा महसूस कर रहे हैं. नीतीश कुमार अमीरों की बात सुनते हैं, जबकि लालू प्रसाद ग़रीबों का दर्द समझते हैं. राजद की महिला इकाई इस बार चुनाव में बिहार की जनता से यह कहेगी कि पांच साल पहले आपने नीतीश कुमार को चुनकर जो ग़लती की, उसे मत दोहराइए और इस बार राजद-लोजपा गठबंधन की सरकार बनवाइए. लालू प्रसाद एवं रामविलास पासवान हर क़ीमत पर महिलाओं के मान-सम्मान की रक्षा करेंगे. उनका कहना है कि दुष्प्रचार करके राजद की छवि ख़राब की गई, पर जनता सच्चाई जान चुकी है.

अब कोई निष्कर्ष निकालें तो यह बात समझ में आती है कि लगभग सभी दलों की महिला इकाइयों ने चुनावी अखाड़े में छलांग लगा दी है और उनका मक़सद अपनी पार्टी की जीत में अहम भूमिका अदा करना है. राज्यसभा में महिला बिल पारित हो जाने से उनका विश्वास बढ़ा है और इस बार के चुनाव में उनकी पूरी कोशिश टिकटों में ज़्यादा से ज़्यादा हिस्सेदारी हासिल कर विधानसभा में दस्तक देने की है.

feedback@chauthiduniya.com

ऊषा सिन्हा

ललिता देवी

नीतू सिंह

हेमलता वर्मा

मांझी ही नाव डुबोए

भुवनचंद्र खंडूरी

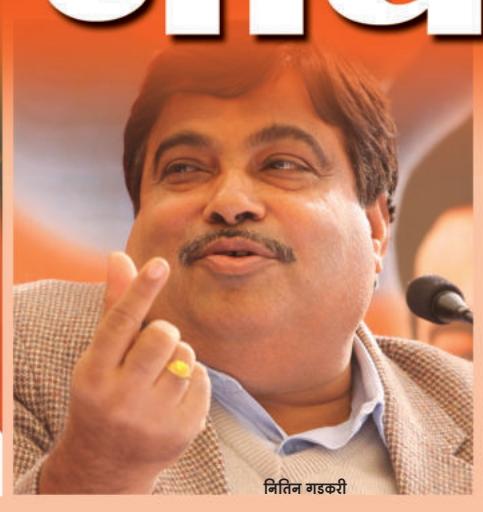

रमेश पोखरियाल निशंक

नितिन गडकरी

राजकुमार शर्मा

देवभूमि उत्तराखंड के राजनीतिक परिदृश्य में फिल्मी गीत की यह पंक्ति इस समय राजनीति का हर मर्मज्ञ गुनगुना रहा है कि मांझी जब नाव डुबोए, उसे कौन बचाए. वजह यह है कि देहरादून दौरे पर भाजपा के राष्ट्रीय अध्यक्ष नितिन गडकरी ने एक बयान दिया था कि मिशन 2012 के खेवनहार निशंक ही होंगे. राजनीति के जानकारों का कहना है कि जब मिशन 2012 को गडकरी ही ध्वस्त करना चाहते हैं, तो उसे कौन बचा सकता है, क्योंकि पार्टी की नाव के खेवनहार गडकरी ने जिस तरह अपने दो दिवसीय दौरे के दौरान जो दो बयान दिए, वे भाजपा के लिए आत्मघाती एवं कांग्रेस की बांछें खिलाने वाले सिद्ध हुए. भाजपा के राष्ट्रीय अध्यक्ष ने सूबे के सुस्त पड़े कांग्रेसी नेताओं को घर बैठे मुद्दा परोस दिया है और ऐसी तलवार पकड़ा दी है, जिसे भांज कर वे अपने को चर्चा में बनाए रखेंगे. अफजल गुरु क्या कांग्रेस का जमाई लगता है? जैसे सवाल को आगे बढ़ाते हुए उन्होंने कहा कि क्या सरकार ने उसे अपनी बेटी दे रखी है, जो उसकी हिफ़ाज़त कर रही है? इस बयान ने नितिन गडकरी को राजनीतिक रूप से अपरिपक्व साबित कर दिया. वहीं घोटालों के आरोपों से घिरी निशंक सरकार के पक्ष में खुलकर उनका बोलना भी इस बात की ओर इशारा कर गया कि पार्टी का मुखिया, जिसे लोग मांझी के रूप में देख रहे हैं, वही जब नाव डुबोने पर आमादा हो तो भला नाव को कौन बचा सकता है.

मालूम हो कि यही ग़लती कांग्रेस की नारायण दत्त तिवारी सरकार ने की थी. वह भी ख़ुद पर दो दर्जन से अधिक घोटालों के आरोपों का जवाब नहीं दे सकी थी और जिसके चलते वह चुनाव में जनता का सामना नहीं कर पाई. कांग्रेस की उसी स्थिति का लाभ भारतीय जनता पार्टी को मिला था. अब वही ग़लती भाजपा ने की है. पार्टी के मुखिया के एक बयान ने राज्य में भाजपा के मिशन 2012 पर क़ालिख़ पोत दी. उत्तराखंड की जनता अब किसी दाग़ी को सत्ता की कुंजी नहीं सौंपना चाहती. निशंक सरकार को बेदाग़ साबित किए बिना उन्हें मिशन 2012 का खेवनहार घोषित करना भाजपा के लिए आत्मघाती सिद्ध हो सकता है. इस आत्मघाती क़दम के लिए सीधे नितिन गडकरी को ज़िम्मेदार माना जा रहा है.

वर्ष 2007 के विधानसभा चुनाव में जनता ने भाजपा को अपनी पहली पसंद बनाया. पूर्व जनरल भुवन चंद्र खंडूरी का बेदाग़ व्यक्तित्व सबके सामने था. इसलिए पार्टी ने भी उन्हें राज्य की बागडोर सौंप दी. खंडूरी ने अपने कार्यकाल में अनुशासित शासन-प्रशासन के साथ-साथ राज्य के ख़ज़ाने की हालत देखते हुए फ़िज़ूलख़र्ची पर कड़ा रुख़ अपनाया. लेकिन पूर्व जनरल को उन्हीं की पार्टी के कुछ दिग्गज लोगों ने बेवजह बदनाम कर दिया और इससे जनता में ग़लत संदेश गया. इसी बीच हुए संसदीय आम चुनाव में राहुल गांधी की हुंकार के आगे पूर्व जनरल की एक न चली. नतीजतन सूबे से भाजपा का सूपड़ा ही साफ हो गया. युवा मतदाताओं पर राहुल गांधी के बढ़ते प्रभाव का असर यह हुआ कि राज्य की पांचों सीटों पर कांग्रेसी तिरंगा लहरा उठा. सूबे में भाजपा का खाता भी न खुल सका. इससे जनरल के विरोधियों की मुंहमांगी मुराद पूरी हो गई. वास्तव में इस हार के लिए अकेले खंडूरी ज़िम्मेदार नहीं थे, बल्कि इसके पीछे प्रत्याशियों के चयन में टिहरी राजघराने की उपेक्षा के साथ-साथ हरिद्वार जैसी सीट पर एक ग़ैर राजनीतिक व्यक्ति को प्रत्याशी बनाने जैसे कई कारण थे. अवसर मिलते ही राजनीति के घाघों ने दिल्ली दरबार से खंडूरी का पत्ता साफ़ करा दिया. अनुशासन के नाम पर उनसे त्यागपत्र दिलवा दिया गया और डॉ. रमेश पोखरियाल निशंक को सूबे की बागडोर सौंप दी गई. खंडूरी सरकार की जड़ में मट्ठा डालने का काम उनके मंत्रियों ने ही किया, क्योंकि वे उनके राज में घोटाले नहीं कर पा रहे थे.

निशंक के नेतृत्व में नई सरकार बनते ही दिग्गजों ने एक बार फिर उत्तराखंड को मॉडल राज्य बनाने का वचन दोहराया, लेकिन खंडूरी के हटते ही शिक्षा, पर्यटन एवं वृक्षारोपण सहित अनेक क्षेत्रों में राज्य को मॉडल प्रदेश बनाने के भाजपा के सपने को भारी धक्का लगा. इन दिनों सूबे में शिक्षा का बुरा हाल है. सरकारी स्कूल भगवान भरोसे चल रहे हैं और सर्व शिक्षा अभियान भी. सौ दिन रोज़गार की गारंटी देने वाली योजना मनरेगा के धन का प्रयोग श्रमिकों के हित में नहीं हो पा रहा है. ग़रीब बच्चों को स्कूल भेजने की कल्याणकारी योजना महज़ काग़ज़ों पर चल रही है. पर्यटन विभाग तो भ्रष्टाचार का पर्याय माना जाता है. इसके मंत्री ने अपनी सेहत तो अच्छी कर ली, लेकिन विभाग की सुध नहीं ली. महाकुंभ 2010 के दौरान मदन कौशिक पर जिस तरह उंगलियां उठीं, उस पर सरकार को सफ़ाई देते नहीं बन रही है. जनास्था से जुड़ी चार धाम यात्रा भी अव्यवस्था की शिकार हो गई. पर्यावरण एवं वन्यजीवों के लिए विख्यात यह राज्य अब वृक्षों की अंधाधुंध कटान और वन्यजीवों के शिकार के लिए जाना जा रहा है. राज्य के कस्तूरी मृग, बाघ, हाथी एवं गुलदार की बड़ी संख्या में हो रही हत्याओं ने सरकार की मंशा और उसकी सार्थकता पर सवाल खड़े कर दिए हैं. दून में वृक्षों की कटान के मिले आंकड़े इशारा करते हैं कि अगर सरकार समय पर न चेती तो वह दिन दूर नहीं, जब हरी-भरी वादियों के लिए विख्यात देहरादून रेगिस्तान बन जाएगा. सरकार वृक्षारोपण तो करती है, लेकिन दिखावे के लिए. शहरी क्षेत्रों में सड़कों के मध्य गमलों में कुछ वृक्ष लगाकर उन पर ग्रीन देहरादून का स्लोगन लिख दिया जाता है. महाकुंभ 2010 में भारी घोटाले, विद्युत परियोजनाओं के वितरण एवं स्टर्डिया फैक्ट्री की ज़मीन एक बिल्डर को देने के कारण सरकार आरोपों की गिरफ़्त में है. राज्य के भाजपाई दिग्गजों से लेकर ग्राम स्तर तक के कार्यकर्ताओं को यह आशा थी कि दिल्ली दरबार मिशन 2012 की गंभीरता का ख्याल करके एक बेदाग़ सेनापति भेजेगी, लेकिन ऐसा नहीं हुआ. राज्य में एक वर्ष बाद चुनाव होंगे. मुख्य विपक्षी दल कांग्रेस के तेवर आक्रामक हैं और वह पूरे जोश में है. ऐसे में गडकरी द्वारा निशंक को अभयदान देना भाजपा के लिए आत्मघाती सिद्ध होगा.

feedback@chauthiduniya.com

यह मुद्दा केवल असंगठित छोटे दुकानदारों तक ही सीमित नहीं है, इसके कई अन्य पक्ष भी हैं, जिन पर सरकार ध्यान नहीं दे रही.

मल्टी ब्रांड रिटेल में एफडीआई

ख़त्म हो जाएंगे छोटे दुकानदार

सभी फोटो–*प्रभात पाण्डेय*

आदित्य पूजन

पिछले तीन सालों में महंगाई में बेतहाशा वृद्धि हुई है. 2007 में यह 5.69 प्रतिशत थी, लेकिन 2010 में 10.55 प्रतिशत के स्तर पर पहुंच चुकी है. वह भी तब, जबकि इस दौरान देश में खाद्यान्नों के उत्पादन में इज़ाफ़ा हुआ है. आम आदमी की जेब से लेकर पेट तक को चोट करती इस महंगाई की सबसे बड़ी वजह क्या है? अर्थशास्त्रियों की राय में इसके लिए सबसे ज़्यादा संगठित रिटेल ज़िम्मेदार है. 2006 में जब पहली बार संगठित रिटेल को भारतीय अर्थव्यवस्था में प्रवेश मिला था तो सरकार ने महंगाई कम होने का दावा किया था. उसके ये दावे देश की ग़रीब जनता के लिए भले एक मज़ाक बनकर रह गए हों, लेकिन सरकार का तो अपना एजेंडा है. अर्थव्यवस्था को खोलने के अपने इसी एजेंडे के तहत वह मल्टी ब्रांड रिटेल में विदेशी निवेश की अनुमति देने का मन बना रही है. हालांकि पूर्व केंद्रीय मानव संसाधन विकास मंत्री डॉ. मुरली मनोहर जोशी की अध्यक्षता वाली वाणिज्य मंत्रालय की स्थायी समिति 2009 में इसका विरोध कर चुकी है, लेकिन पिछली छह जुलाई को सरकार ने एक परिचर्चा पत्र प्रकाशित कर इस संबंध में आम लोगों से सुझाव आमंत्रित किए हैं. सरकार की सक्रियता को देखकर ऐसा लग रहा है कि जैसे वह मल्टी ब्रांड रिटेल में विदेशी निवेश की अनुमति देने का मन बना चुकी है और अब इसे अमलीजामा पहनाने की तैयारी में है.

मल्टी ब्रांड रिटेल में विदेशी निवेश की अनुमति देने का मतलब यह है कि किराने की दुकानों में बिकने वाले आटा-दाल समेत ग्रॉसरी के सभी किस्म के खाद्य एवं मैन्यूफैक्चर्ड उत्पादों की बिक्री का धंधा फैलाने के लिए बहुराष्ट्रीय कंपनियों को इजाज़त मिल जाएगी और महानगरों से लेकर देश के ग्रामीण इलाक़ों तक उनका जाल फैल जाएगा. मौजूदा व्यवस्था में रिटेल कंपनियों को सीधे उपभोक्ताओं को अपना सामान बेचने की अनुमति नहीं है. सिंगल ब्रांड रिटेल में 51 प्रतिशत विदेशी निवेश की अनुमति के तहत कंपनियां केवल होलसेल आउटलेट्स ही खोल सकती हैं. लेकिन सरकार का मानना है कि रिटेल सेक्टर की भविष्य की ज़रूरतों के मद्देनज़र और आवश्यक आधारभूत संरचना के विकास के लिए मल्टी ब्रांड रिटेल में विदेशी निवेश की अनुमति ज़रूरी है. उसका यह भी दावा है कि इससे सप्लाई चेन में सुधार होगा, खेतों की उत्पादकता बढ़ेगी, किसानों की आय बढ़ेगी और उपभोक्ता सामानों की क़ीमतों में कमी आएगी. लेकिन यही तर्क तो 2006 में सिंगल ब्रांड रिटेल में विदेशी निवेश की अनुमति देते समय भी दिया गया था. लेकिन आज महानगरों में कुटॉन्स, लेवाइस एवं रीबॉक जैसी कंपनियों के सामने मफतलाल, अरविंद मिल्स और बाटा जैसी देशी कंपनियां प्रतियोगिता में बने रहने के लिए संघर्ष कर रही हैं. चौथी दुनिया के साथ बातचीत में डॉ. जोशी ने कहा कि मल्टी ब्रांड हो या सिंगल ब्रांड, हम रिटेल क्षेत्र में किसी भी तरह के विदेशी निवेश के ख़िलाफ़ हैं. हमने 2006 में सिंगल ब्रांड रिटेल में विदेशी निवेश का भी विरोध किया था, क्योंकि यह देश की अर्थव्यवस्था के लिए घातक है.

उपभोक्ता सामानों की क़ीमतों का जो हाल है, उसे समझने के लिए शायद ही कुछ कहने की ज़रूरत हो. अर्थशास्त्रियों का मानना है कि सुरसा के मुंह की तरह बढ़ती महंगाई के लिए सबसे ज़्यादा संगठित रिटेल सेक्टर ही ज़िम्मेदार है. उनका दावा है कि संगठित रिटेल क्षेत्र की कंपनियों के पास अथाह संपत्ति होती है और वे बड़े पैमाने पर जमाख़ोरी करती हैं, जिससे क़ीमतें बढ़ती हैं. यह हाल तब है, जबकि भारतीय बाज़ार में संगठित रिटेल की हिस्सेदारी केवल 5 प्रतिशत है. एक अनुमान के मुताबिक़, साल 2015 तक यह मौजूदा 20 बिलियन डॉलर के स्तर से 75 बिलियन डॉलर के आंकड़े को पार कर जाएगी. फिर देश की अर्थव्यवस्था को उक्त कंपनियां किस हद तक प्रभावित करने में कामयाब होंगी, इसका सहज ही अंदाज़ा लगाया जा सकता है. इसके बावजूद सरकार मल्टी ब्रांड रिटेल में विदेशी निवेश की सीमा को बढ़ाने की तैयारी में है, जबकि छोटे रिटेलर्स इसका पुरज़ोर विरोध कर रहे हैं. सरकार यदि अपने मक़सद में कामयाब रही तो गांवों-कस्बों में चल रही छोटी दुकानों का स्थान वॉलमार्ट, मेट्रो एवं टेस्को जैसी कंपनियां ले लेंगी. अर्थव्यवस्था के इस बदले स्वरूप से निबटने के लिए ख़ुद सरकार कितनी तैयार है, यह कहना मुश्किल है.

छोटे दुकानदारों के विरोध की भी जायज़ वजह है. दुनिया की सबसे बड़ी रिटेल कंपनियों में गिनी जाने वाली वॉलमार्ट ने पिछले साल 400 अरब डॉलर से ज़्यादा का कारोबार किया, जो चालू वित्तीय वर्ष में हमारी कुल बजट राशि के दोगुने से थोड़ा ही कम है. कंपनी का आर्थिक साम्राज्य कई एशियाई देशों की जीडीपी से ज़्यादा है. ऐसे में इन दुकानदारों को अपने भविष्य की चिंता हो रही है. उन्हें अंदेशा है कि एक बार मल्टी ब्रांड रिटेल में विदेशी निवेश की अनुमति दे दी गई तो उनके लिए प्रतियोगिता में बने रहना नामुमकिन हो जाएगा. संगठित क्षेत्र की बड़ी कंपनियों की सीधी और स्पष्ट रणनीति होती है, क़ीमतों को इतना कम कर दो कि छोटे प्रतियोगी ख़ुद ही बाज़ार से बाहर हो जाएं. फिर बाज़ार पर अपनी पकड़ मज़बूत होने के बाद क़ीमतों को मनमाने तरीक़े से बढ़ाने की ताक़त इनके पास होती है. दूसरे देशों में ऐसे हथकंडे अपनाने के आरोप वॉलमार्ट पर पहले भी लगते रहे हैं. छोटे रिटेलर्स इसी आशंका से ख़ौफ़ज़दा हैं. यह मामला उनकी रोज़ी-रोटी से जुड़ा है, लेकिन सरकार बहुराष्ट्रीय कंपनियों के दबाव में उनके हितों की अनदेखी करने के लिए कमर कस चुकी है.

मल्टी ब्रांड रिटेल में विदेशी निवेश की अनुमति देने का मतलब यह है कि किराने की दुकानों में बिकने वाले आटा-दाल समेत ग्रॉसरी के सभी किस्म के खाद्य एवं मैन्यूफैक्चर्ड उत्पादों की बिक्री का धंधा फैलाने के लिए बहुराष्ट्रीय कंपनियों को इजाज़त मिल जाएगी और महानगरों से लेकर देश के ग्रामीण इलाक़ों तक उनका जाल फैल जाएगा.

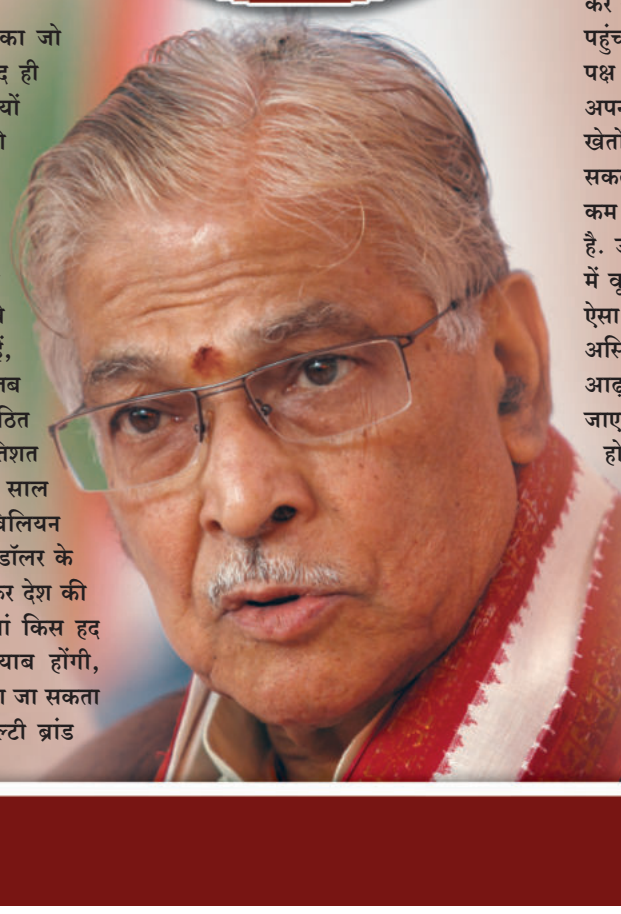

यह मुद्दा केवल असंगठित छोटे दुकानदारों तक ही सीमित नहीं है, इसके कई अन्य पक्ष भी हैं, जिन पर सरकार ध्यान नहीं दे रही. छोटे शहरों और गांवों की आर्थिक संरचना में इन दुकानों की अपनी अलग अहमियत है. पूरे देश में मौजूद छोटी दुकानें ग्रामीण अर्थव्यवस्था को एक स्थायी स्वरूप देती हैं, ये गांवों की ग़रीब जनता के लिए दोनों समय का भोजन उपलब्ध कराने का ज़रिया भी हैं. छोटे-मोटे काम या मज़दूरी करके जीवनयापन करने वाली यह जनता दिन में कमाई कर शाम को अपने और परिवार के लिए खाने का सामान ख़रीदती है. किसी दिन कमाई नहीं भी हुई तो उसे इन दुकानों से सामान उधार भी मिल जाता है. गांवों-कस्बों में एक रुपये का नमक, एक पाव आटा, पच्चीस ग्राम तेल और दो रुपये का आलू ख़रीदते लोगों को हम में से किसने नहीं देखा. मल्टी ब्रांड रिटेल में विदेशी निवेश की अनुमति देने से जमी-जमाई इस सामाजिक-आर्थिक संरचना का मुख्य आधार ही हिल जाएगा, गांवों की ग़रीब जनता के लिए अपनी रोज़ाना की ज़रूरतों को पूरा करना और भी ज़्यादा मुश्किल हो जाएगा. डॉ. जोशी कहते हैं कि मौजूदा व्यवस्था में कम पढ़े-लिखे, अशिक्षित लोगों के लिए रिटेल रोज़गार का सबसे बड़ा साधन है. कोई काम नहीं मिला तो सड़क के किनारे रेहड़ी लगाकर ही बैठ गए. यदि गांवों और छोटे शहरों में बहुराष्ट्रीय कंपनियां पहुंच गईं तो आबादी के एक बड़े हिस्से के सामने रोज़गार का संकट खड़ा हो जाएगा. बड़ी कंपनियां उन्हें ही नौकरी देंगी, जिनके पास अंग्रेजी और कंप्यूटर का ज्ञान है.

लेकिन सरकार को इसकी कोई चिंता नहीं है. उसे तो केवल अपने उदारवादी एजेंडे की फ़िक्र है. वह देश के हर कोने में बहुराष्ट्रीय कंपनियों की पहुंच बनाने के अपने एकसूत्रीय कार्यक्रम को पूरा करने के लिए हरसंभव कोशिश कर रही है. यदि उक्त कंपनियां गांवों-कस्बों तक पहुंच गईं तो ग्रामीण अर्थव्यवस्था का एक अन्य पक्ष भी इसकी चपेट में आने से बच नहीं सकेगा. अपनी लागत कम करने के लिए कंपनियां सीधे खेतों से ही खाद्यान्न ख़रीदने का विकल्प अपना सकती हैं. दलालों और आढ़तियों की भूमिका को कम करने के लिए ख़ुद सरकार भी ऐसा ही चाहती है. उसका मानना है कि इससे किसानों की आय में वृद्धि होगी. लेकिन वह यह नहीं सोच रही कि ऐसा हुआ तो पूरे देश में फैली अनाज मंडियों के अस्तित्व पर ख़तरा पैदा हो जाएगा, दलालों एवं आढ़तियों को अपने रोज़गार से हाथ धोना पड़ जाएगा और लाखों लोग एक झटके में बेरोज़गार हो जाएंगे. एक अनुमान के मुताबिक़, क़रीब पांच करोड़ छोटे व्यापारी और स्वरोज़गार वाले लोग रिटेल से जुड़े हैं. इसके अलावा क़रीब तीस करोड़ लोगों के लिए रिटेल व्यवसाय रोज़ी-रोटी का ज़रिया है. इस आशंका से भी इंकार नहीं किया जा सकता कि बिचौलियों को सप्लाई चेन से बाहर करने के बाद कंपनियां किसानों को अपनी क़ीमतों पर सामान बेचने के लिए मजबूर करेंगी और विकल्प के अभाव में किसान भी ऐसा करने के लिए बाध्य होंगे. इतना ही नहीं, इससे देश की कृषि संरचना पर भी बुरा असर पड़ेगा. कंपनियां किसानों को अपनी ज़रूरत के मुताबिक़ किसी एक फ़सल को ही बार-बार बोने के लिए मजबूर करेंगी. इससे रोटेशन ऑफ क्रॉप्स नहीं हो पाएगा और खेत की पैदावार कम होती जाएगी. इस संबंध में डॉ. जोशी मध्य प्रदेश का उदाहरण देते हैं, जहां लगातार सोयाबीन और सूर्यमुखी की फ़सल बोने के चलते आधे से ज़्यादा खेत बंजर होने की कगार पर पहुंच चुके हैं. इन फ़सलों के लिए उन्हें जो बीज उपलब्ध कराया जाएगा, उसका पेटेंट इन्हीं कंपनियों या उनकी सहयोगी इकाइयों के नाम होगा. मतलब यह कि सरकार किसानों की आय बढ़ने के दावे भले कर रही हो, लेकिन सच्चाई यह है कि किसान चारों ओर से इन कंपनियों के मायाजाल में फंसकर रह जाएंगे.

सरकार को इन सब बातों की कोई चिंता नहीं है. मल्टी ब्रांड रिटेल में विदेशी निवेश की अनुमति मिलने से आम लोगों को होने वाली दिक्कतों की फ़िक्र उसे नहीं है, न ही वह छोटे दुकानदारों के भविष्य को लेकर सोच रही है. ग्रामीण अर्थव्यवस्था में आए बदलाव से निबटने के लिए उसके पास क्या योजना है, सरकार यह नहीं बता रही. वह तो हर सूरत में देश में विदेशी निवेश को बढ़ाने के लक्ष्य के साथ काम कर रही है और करोड़ों लोगों की रोज़ी-रोटी छीनने पर उतारू है. आर्थिक विशेषज्ञ संगठित रिटेल क्षेत्र की बढ़ती ताक़त को लेकर बार-बार चेतावनी दे रहे हैं, लेकिन सरकार अपने एजेंडे पर कायम है. 2009 में डॉ. मुरली मनोहर जोशी की अध्यक्षता वाली वाणिज्य मंत्रालय की स्थायी संसदीय समिति ने अपनी रिपोर्ट में कहा था कि कंपनियां सिंगल ब्रांड रिटेल में एफडीआई के नियमों का सही तरीक़े से पालन नहीं कर रही हैं. आश्चर्य की बात है कि सरकार सिंगल ब्रांड रिटेल के बाद मल्टी ब्रांड रिटेल में भी विदेशी कंपनियों के प्रवेश का रास्ता तैयार कर रही है, लेकिन इन कंपनियों की गतिविधियों पर नज़र रखने के लिए किसी नियामक निकाय का गठन अब तक नहीं किया गया है. स्थायी समिति ने अपनी रिपोर्ट में सरकार को इस संदर्भ में चेतावनी भी दी थी और किसी रेगुलेटरी बॉडी के गठन से पहले मल्टी ब्रांड रिटेल को विदेशी कंपनियों के लिए खोलने का विरोध किया था, लेकिन तमाम सलाहों को दरकिनार करते हुए सरकार करोड़ों लोगों की रोज़ी-रोटी पर धावा बोलने और पूरे देश में बहुराष्ट्रीय कंपनियों का मायाजाल फैलाने की तैयारी में है.

aditya@chauthiduniya.com

मदरसों की जगह प्राइमरी पाठशाला को तरजीह देने के भी कई कारण हैं, वे समाज की मुख्यधारा से जुड़कर काम करना चाहते हैं, लेकिन उनकी आवाज़ कोई सुनने को तैयार नहीं है.

मुस्लिम वोटों पर सबकी नज़र

सुरेंद्र अग्निहोत्री

उत्तर प्रदेश में 2012 के विधानसभा चुनाव की जंग जीतने के लिए राजनीतिक दलों में मुस्लिम कार्ड खेलने की होड़ मच गई है. कांग्रेस महासचिव दिग्विजय सिंह आजमगढ़ के संजरपुर पहुंच कर बाटला हाउस एनकाउंटर पर सवाल खड़ा करके मुस्लिम समाज को लामबंद करने की कोशिश कर चुके हैं. बसपा प्रमुख मायावती विभिन्न मुस्लिम नेताओं का समर्थन हासिल करने की कोशिश करती रही हैं. उत्तर प्रदेश में तक़रीबन 20 प्रतिशत के आसपास पहुंच रही मुस्लिम आबादी को अपने पक्ष में करने के लिए विभिन्न सामाजिक संगठन राजनीतिक रूप अख्तियार कर चुके हैं, जिनमें उलेमा काउंसिल, मोमिन कांफ्रेंस एवं पीस पार्टी प्रमुख हैं, जो मुस्लिम वोटों के बल पर चुनौती देने के लिए दम भर रहे हैं. पीस पार्टी को डुमरियागंज विधानसभा क्षेत्र के उपचुनाव में मिले वोटों की संख्या देखकर कांग्रेस उसका ख़ुद में विलय कराने की कोशिश में लग गई है. मोमिन कांफ्रेंस के प्रदेश अध्यक्ष मोहम्मद रईस अंसारी मुस्लिम समाज की एक मुकम्मल तस्वीर से रूबरू कराते हैं. पग-पग पर दुश्वारियां, चौतरफ़ा बिखरा ग़रीबी का मंजर, फांके में बीतती सुबह तो पेट दाबे शाम. बात केवल अपनी ही होती तो भी कुछ गनीमत होती, मगर यहां 10 माह की बिन मां-बाप की नन्हीं सी जान और सिर पर बैठी एक कुंवारी बेटी भी. आमदनी का कोई ज़रिया नहीं. दोनों जवान बेटे नजराना के परिजनों द्वारा आरोप लगाने के कारण जेल में. 70 साल की बुढ़िया जमीला करे भी तो क्या, कहां जाए? सिसकियों के बीच अगर कुछ फूटती है बस यही दुआ कि या मौला, ज़िंदगी दे तो ऐसी न दे.

यह वही जमीला है, जिसकी 25 साल की मंझली बहू नज़राना ने परिवार की जर्जर माली हालत से तंग आकर ख़ुदकुशी कर ली थी. बेवा जमीला के शौहर मुहम्मद मुस्तफ़ा को मरे 25 साल से अधिक हो गए. उस वक़्त उसके तीनों बेटे बहुत छोटे थे और लड़की गोद में थी. दो बेटों की शादी की. लूम चलाते हुए दोनों बेटों ने भी पैसा इकट्ठा करके एक-एक लूम ले लिया और बुनकरी से अपने परिवार का पेट पाल रहे थे, लेकिन आर्थिक मंदी और सरकारी नीतियों से ताना-बाना बिखर गया है. जमीला के पास सिवा फफकने-सिसकने के कोई चारा नहीं है. यही हालत बाकी ग़रीब मुस्लिमों की है. रईस अंसारी की बात में दम नज़र आता है. बीड़ी बनाने से लेकर बुनकरी, जरदोजी एवं चिकनकारी जैसे हुनर के दम पर दो वक़्त की रोटी हासिल करने वाले मुस्लिम युवाओं में भविष्य को लेकर बड़ा सवाल खड़ा है. बेरोज़गार उर्दू मोअल्लिम दर-दर भटकने के लिए मजबूर हैं. पांच हज़ार से ज़्यादा इन युवाओं ने यह डिग्री इसलिए ली थी कि राज्य सरकार उन्हें प्राइमरी शिक्षक के तौर पर सरकारी नौकरी में ले लेगी, लेकिन अब वे सड़कों पर संघर्ष करने और पुलिस की लाठियां खाने को मजबूर हैं. मदरसों की जगह प्राइमरी पाठशाला को तरजीह देने के भी कई कारण हैं, वे समाज की मुख्यधारा से जुड़कर काम करना चाहते हैं, लेकिन उनकी आवाज़ कोई सुनने को तैयार नहीं है. हज और मदरसों के मायाजाल में उलझा कर मुसलमानों को बुनियादी सुविधाओं-अधिकारों से वंचित किया जा रहा है.

सियासी ताक़त जुटाए बग़ैर कुछ हाथ आने वाला नहीं है, कौम की तरक़्क़ी चाहिए तो एकजुटता पैदा करें, एमपी-एमएलए के चुनाव में समाज के प्रत्याशी को चुनें. यह आह्वान करते हुए मिल्लत-ए-सैफिया कमेटी के राष्ट्रीय अध्यक्ष हाजी इस्लामुद्दीन सैफी कहते हैं कि उनके समुदाय की आबादी और वोट कम नहीं हैं. चिंता इस बात की है कि लोकसभा और विधानसभा में सैफी समाज का प्रतिनिधित्व करने वाला कोई नहीं है. चुनाव आते हैं तो सैफी समाज पार्टियों में बंट जाता है. उसे अपना भाई, विकास और हितैषी पार्टी का कोई ध्यान नहीं रहता. जब समय हाथ से निकल जाता है, तब कौम की तरक़्क़ी याद आती है. उन्होंने लोगों से कहा कि जो पार्टी उनकी कौम के व्यक्ति को मैदान में उतारे, उसे ही एकजुट होकर सहयोग किया जाए. दूसरी ओर शिया धर्म गुरु मौलाना कल्बे जव्वाद मुस्लिम राजनेताओं पर सवालिया निशान लगाते हैं. वह कहते हैं कि मुस्लिम नेता कौम की भलाई नहीं, अपनी गर्ज पूरी करने में लगे हैं. वे राजनीतिक दलों के हाथों बिके हुए हैं. लीडरशिप को बढ़ावा देने के लिए ही जमात के रूप में मिलकर काम करने का प्रस्ताव लाया गया था और कोशिश की गई थी कि उलेमाओं एवं मुस्लिम नेताओं को जोड़कर मरकजी सतह पर नुमाइंदगी की जा सके. इसमें पार्टियों से जुड़े मुस्लिम नेता रोड़ा बन गए, साथ इसलिए नहीं आए, क्योंकि वे अपने हित साधने में लगे हैं. यही वजह है कि मुसलमान इतनी बड़ी तादाद में होने के बाद भी तितर-बितर हैं. तालीम में बुरी तरह पिछड़ चुके हैं, जबकि पैगंबर-ए-रसूल ने तालीम पर ही सबसे ज़्यादा जोर दिया. यहां तक कहा कि पढ़ने के लिए चीन जाना पड़े तो चीन तक जाओ. मौलाना ने तमाम सरकारों पर उपेक्षा का इल्ज़ाम लगाते हुए मुसलमानों का आह्वान किया कि उन्हें तरक़्क़ी में दूसरी कौमों के साथ खड़ा होना है तो तालीम में आगे निकलना होगा.

उर्दू-अरबी-फारसी यूनिवर्सिटी के वीसी अनीस अंसारी मुस्लिम समाज की राह में केंद्र को रोड़ा मानते हैं. वह कहते हैं कि केंद्र सरकार चाहे तो मुसलमानों की तकदीर बदल जाएगी. उसे बस संविधान के उस एक्ज़ीक्यूटिव आदेश को ख़त्म करना होगा, जिसमें शेड्यूल कास्ट होने के लिए हिंदू शब्द कोड किया गया है. सूबे में कृषि उत्पादन आयुक्त रहे अंसारी ने कहा कि केंद्र के लिए यह कोई मुश्किल काम नहीं है. रंगनाथ मिश्र आयोग 1950 के एक्ज़ीक्यूटिव आदेश को संविधान के ख़िलाफ़ क़रार दे चुका है. ऐसे में केंद्र को बस एक विधेयक लाना होगा, जिसके पारित होते ही अनुसूचित जाति का लाभ मुसलमानों, बौद्धों एवं ईसाइयों को भी मिलने लगेगा. तब कपड़े धोने और सफाई का काम करने वाले मुसलमानों की हालत बदल जाएगी. विधानसभा और लोकसभा में मुस्लिम नुमाइंदों की तादाद में भी इज़ाफ़ा होगा.

उलेमा काउंसिल को लोकसभा चुनाव में भले ही कोई सफलता न मिली हो, लेकिन उसके बाद पूरी तरह से राजनीतिक पार्टी बन चुकी काउंसिल ने अगले विधानसभा चुनाव में बड़ी कामयाबी की उम्मीद पाल रखी है. काउंसिल के राष्ट्रीय अध्यक्ष मौलाना आमिर रशदी दावा करते हैं कि विधानसभा चुनाव के बाद बनने वाली अगली सरकार की चाबी काउंसिल के हाथ में होगी. अगर हम सत्ता में नहीं भी आए तो जिस मक़सद को लेकर पार्टी का गठन किया गया है, उसे ज़रूर पूरा कर लेंगे. हमने काउंसिल का गठन करने के साथ ही कहा था कि हिंदू-मुस्लिम साथ चलेंगे, दोनों मिलकर राज करेंगे. हमारा मानना है कि जब तक देश में मजहब के नाम पर बनाई गई खाई को नहीं पाटा जाएगा, तब तक देश और समाज का भला होने वाला नहीं है. उन्होंने कहा कि कतिपय दलों के लोग राजनीति को धर्म से अलग करने की बात करते हैं, लेकिन यह ग़लत है. इससे भ्रष्टाचार और अराजकता का वातावरण बन रहा है. जिस दिन हम यह मानकर राजनीति करेंगे कि जिस काम की इजाज़त धर्म नहीं देता, उसे नहीं करेंगे तो उसी दिन से देश का विकास शुरू हो जाएगा. भ्रष्टाचार भी समाप्त हो जाएगा, क्योंकि कोई भी धर्म ग़लत काम करने की इजाज़त नहीं देता.

केंद्रीय अल्पसंख्यक कल्याण मंत्री सलमान ख़ुर्शीद केंद्र सरकार द्वारा शुरू की गई योजनाओं की फ़ेहरिस्त देते हैं, जिसमें अल्पसंख्यक समुदाय के विद्यार्थियों के लिए पूर्व मैट्रिक छात्रवृत्ति प्रमुख है. इसके तहत आवासीय संस्थानों सहित सरकारी एवं निजी स्कूलों के कक्षा एक से 10 तक के पात्र विद्यार्थियों को छात्रवृत्ति प्रदान की जाएगी. वित्तीय सहायता में प्रवेश-शिक्षण शुल्क एवं भरण-पोषण भत्ता सम्मिलित होगा. ऐसे विद्यार्थी, जिन्होंने पूर्ववर्ती अंतिम परीक्षा में कम से कम 50 प्रतिशत अंक हासिल किए हों और जिनके माता-पिता या संरक्षक की वार्षिक आय एक लाख रुपये से अधिक न हो, इस छात्रवृत्ति के लिए अर्ह होंगे. सरकारी या निजी उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों, संस्थानों, कॉलेजों एवं विश्वविद्यालयों के कक्षा 11 से पीएचडी तक और कक्षा 11 और 12 स्तर के आईटीआई, आईटीसी (एनसीबीटी से संबद्ध) के टेक्निकल एवं व्यवसायिक पाठ्यक्रमों के अल्पसंख्यक समुदाय के सुपात्र विद्यार्थियों को भी छात्रवृत्ति प्रदान की जाएगी.

वित्तीय सहायता में प्रवेश-शिक्षण शुल्क और भरण-पोषण भत्ता सम्मिलित होगा. ऐसे विद्यार्थी, जिन्होंने पूर्ववर्ती अंतिम परीक्षा में कम से कम 50 प्रतिशत अंक हासिल किए हों और जिनके माता-पिता या संरक्षक की वार्षिक आय 2 लाख रुपये से अधिक न हो, इस छात्रवृत्ति के लिए अर्ह होंगे. पूर्व स्नातक एवं परास्नातक स्तर पर टेक्निकल-व्यवसायिक पाठ्यक्रमों के लिए प्रत्येक वर्ष अल्पसंख्यक समुदायों के योग्य विद्यार्थियों को भी छात्रवृत्ति प्रदान की जाएगी. वित्तीय सहायता में कोर्स का शुल्क और भरण-पोषण भत्ता सम्मिलित होगा. ऐसे विद्यार्थियों के माता-पिता या संरक्षक की सभी स्रोतों से वार्षिक आय 2.50 लाख रुपये से अधिक नहीं होनी चाहिए. अल्पसंख्यक समुदाय के विद्यार्थियों के लिए मौलाना आज़ाद राष्ट्रीय छात्रवृत्ति की घोषणा की गई है. ऐसे विद्यार्थियों, जो विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के मानकों के अनुसार नियमित और पूर्णकालिक एम.फिल एवं पीएचडी के लिए पंजीकृत किए गए हैं, को यह छात्रवृत्ति प्रदान की जाएगी. ऐसे विद्यार्थी, जिन्होंने परास्नातक स्तर पर कम से कम 50 प्रतिशत अंक हासिल किए हों और जिनके माता-पिता या संरक्षक की सभी स्रोतों से वार्षिक आय 2.50 लाख रुपये से अधिक न हो, वे इस छात्रवृत्ति के लिए अर्ह हैं.

कांग्रेस द्वारा सरकारी इमदाद के बल पर मुस्लिम समाज को जोड़ने की कोशिश कितनी कामयाब होती है, यह तो वक़्त बताएगा, लेकिन इतना तय है कि समाजवादी पार्टी से रूठ चुका यह समाज कांग्रेस को लोकसभा चुनाव में समर्थन देकर अपनी ताक़त का एहसास करा चुका है. अनेक मुस्लिम संगठन इस ताक़त को अपने पाले में करने और सौदागर की भूमिका निभाने के लिए मैदान में आ गए हैं. भले ही चुनाव होने में अभी दो वर्ष का वक़्त है, लेकिन अपनी ताक़त के बल पर ज़्यादा से ज़्यादा लाभ लेने की कोशिशें शुरू हो गई हैं. राजधानी लखनऊ की सड़कें मुस्लिम सम्मेलनों के पोस्टरों से अटी पड़ी हैं. ज़मीनी तंजीमी संगठन मानी जाने वाली मोमिन कांफ्रेंस भी राजनीतिक रुख़ अख्तियार कर चुकी है. देखना है कि मुस्लिम मतों के बल पर उत्तर प्रदेश की सियासी तस्वीर क्या बनती है.

feedback@chauthiduniya.com

मेरी दुनिया.... कॉमनवेल्थ गेम्स ! ...धीर

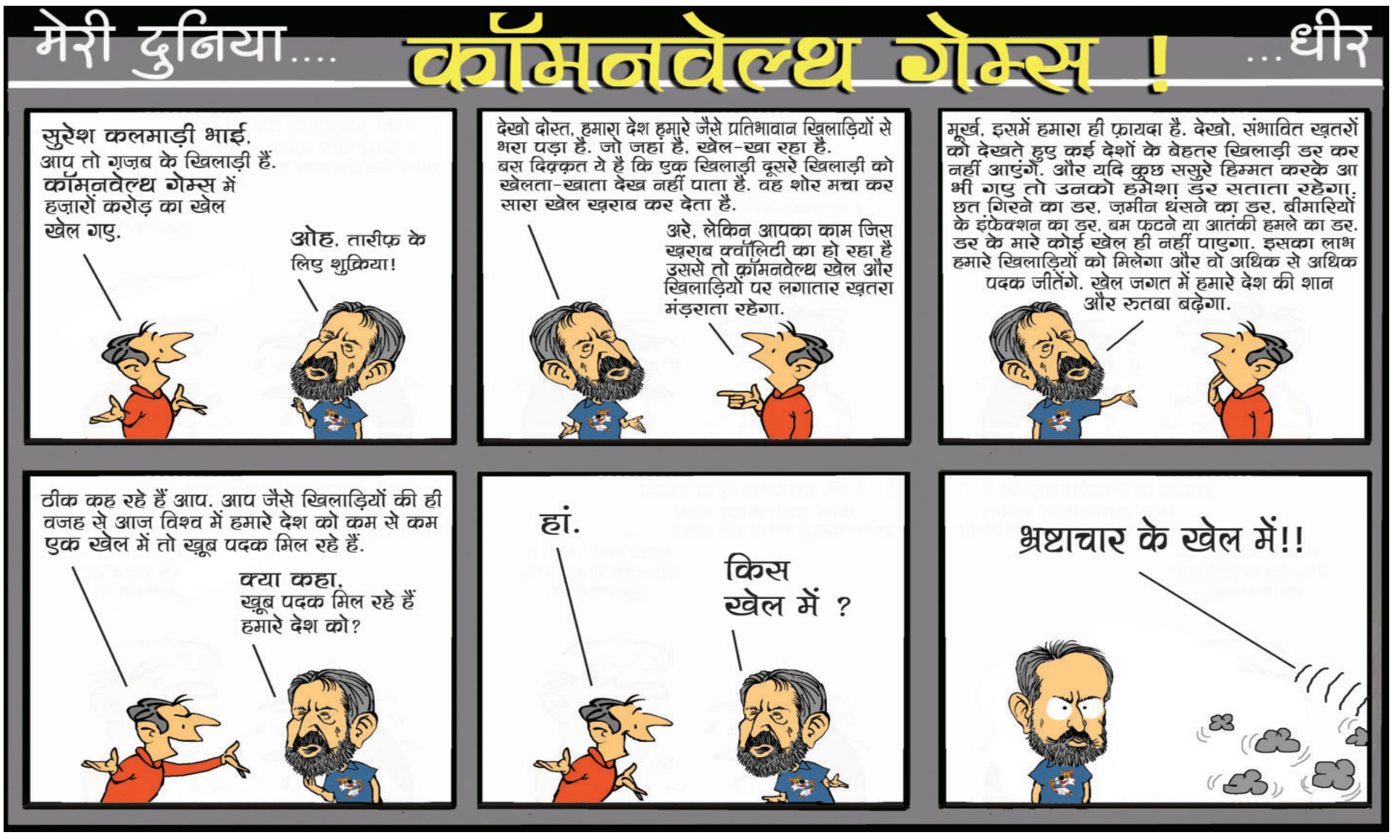

स्वास्थ्य विभाग में एएनएम के पद पर कार्यरत शांति टेरेसा लाकरा ने इस चुनौती को स्वीकार किया और अपने पेशेगत कर्तव्य को सर्वोपरि रखते हुए 2001 में डुगोंग क्रीक में मोर्चा संभाल लिया.

फ्लोरैंस नाइटिंगल की विरासत

नर्सिंग के क्षेत्र में प्रतिबद्धता एवं कर्तव्यपरायणता की मिसाल क़ायम करने वाली फ्लोरेंस नाइटिंगल की विरासत उन्होंने संजोकर रखी है. निजी स्वार्थ और आरामदायक ज़िंदगी उनके लिए कोई मायने नहीं रखती और दूसरों की सेवा ही उनका मिशन है. यही कारण है कि शांति टेरेसा लाकरा ने वर्षों अपने नवजात बेटे से दूर रहकर संकटग्रस्त ओंगी आदिम जनजाति के लोगों की सेवा की, जिसके लिए उन्हें हाल में नेशनल फ्लोरेंस नाइटिंगल अवॉर्ड से नवाज़ा गया है.

उमाशंकर मिश्र

कई सालों तक मुख्यभूमि से दूर अंडमान के छोटे से टापू पर घने जंगल में आदिम जनजातियों के लोगों के साथ रहने के बाद शांति टेरेसा लाकरा अब धाराप्रवाह ओंगी भाषा बोलती हैं. फ़िलहाल वह ओंगी लोगों के साथ नहीं रहतीं, लेकिन पोर्ट ब्लेयर स्थित जी बी पंत अस्पताल के ट्राइबल वार्ड में इलाज के लिए आने वाले ओंगी जब शांति को देखते हैं तो उनके चेहरे पर ख़ुशनुमा मुस्कान तैर जाती है. शायद यही कारण है कि आज भी 35 वर्षीय शांति कहती हैं कि यदि पूरी ज़िंदगी उन लोगों के साथ बिताने के लिए कहा जाए तो मुझे मंजूर है.

लकड़ी से बने घर के फर्श पर लेटी ओंगी जनजाति की 6 महीने की गर्भवती महिला रजनी बेचैन थी और स्वास्थ्यकर्मी शांति टेरेसा लाकरा उसके पेट पर हाथ फेरकर अजन्मे बच्चे की स्थिति का पता लगा रही थीं. लिटिल अंडमान स्थित डुगोंग क्रीक में सरकार द्वारा जनजातीय समुदाय के लिए बनाए गए एक अन्य घर में गीताई नामक महिला भी लाकरा से अपने नवजात बच्चे की डायरिया जांच के लिए खड़ी थी. नेग्रीटो समूह के आदिम जनजातीय परिवारों के घरों में जाकर स्वास्थ्य जांच का यह काम पहली बार हो रहा था. शांति बताती हैं कि ओंगी लोगों में चर्म रोग, टीबी, लीवर सिरोसिस एवं जलजनित बीमारियां आम थीं और बाहरी लोगों के संपर्क में आने से तंबाकू चबाने की आदत ओंगी पुरुषों को लग गई, जिससे उन्हें श्वास संबंधी बीमारियां होने लगीं. दूसरी ओर कम उम्र में कई बार बच्चों को जन्म देने के कारण महिलाओं की मृत्यु हो जाना भी एक चुनौती थी. 2001 में जब शांति ने ओंगी जनजाति के लोगों के साथ डुगोंग क्रीक में काम करना शुरू किया तो उनकी संख्या महज़ 78 थी. यूनीसेफ के मुताबिक़, भारत में प्रति हज़ार जीवित बच्चों के जन्म पर 58 बच्चों की मृत्यु हो जाती है और एक लाख शिशुओं के जन्म पर 407 माताओं को अपने जीवन की बलि देनी पड़ती है. इस सच्चाई के बीच जंगल की विषम परिस्थितियों में इतनी कम आबादी वाले एक आदिम जनजातीय समुदाय की महिलाओं एवं नवजात बच्चों को अपने अस्तित्व के लिए किस तरह का संघर्ष करना पड़ता होगा, इसका सहज अंदाज़ा लगाया जा सकता है.

भारत की मुख्यभूमि से सैकड़ों मील दूर अंडमान में चारों ओर सागर से घिरे छोटे से टापू डुगोंग क्रीक पर वंचित एवं ग़रीब ओंगी आदिम जनजातीय लोगों की घटती संख्या को नियंत्रित करने के साथ-साथ उनकी जन्म दर में बढ़ोत्तरी की चुनौती आदिम जनजाति विकास विभाग एवं अंडमान के स्वास्थ्य विभाग के सामने बनी हुई थी. इस चुनौती का सामना करने का साहस अब तक कोई स्वास्थ्यकर्मी नहीं जुटा सका था, जो डुगोंग क्रीक जाकर ओंगी जनजाति के लोगों की सेवा-सहायता कर सके. यहां शांति की प्रतिबद्धता काम आई और ओंगी लोगों की संख्या 100 के आंकड़े तक पहुंच गई. वर्ष 2008 में सरकारी लापरवाही के कारण खाद्य संक्रमण से कई लोगों की मौत हो गई. फ़िलहाल अनाधिकारिक तौर पर डुगोंग क्रीक में क़रीब 72 ओंगी लोगों के होने की बात कही जा रही है. इसके बावजूद विभागीय आंकड़ों में ओंगी जनजाति के लोगों की संख्या अभी 98 दर्शाई जाती है.

शांति टेरेसा लाकरा ने एलडीसी की नौकरी से त्यागपत्र देकर अपनी बहन की राह पर चलते हुए नर्सिंग के पेशे को अपनाया, लेकिन उन्होंने कभी सपने में भी नहीं सोचा था कि उनकी पहली पोस्टिंग एक ऐसे टापू पर होगी, जहां सामान्य दुनिया के लोगों का बसेरा नहीं है, बल्कि वहां ओंगी जनजातीय लोगों के कुछ परिवार रहते हैं. सरकार की ओर से इन परिवारों के स्वास्थ्य प्रतिरक्षण एवं उनकी संख्या में बढ़ोत्तरी के मद्देनज़र स्थायी आवास बनाकर ओंगी लोगों को बसाया गया है. ओंगी अंडमान के नेग्रीटो समूह की आदिम जनजातियों में से एक है, जिसे संकटग्रस्त जनजातियों में गिना जाता है. लंबे समय तक ओंगी जनजाति के लोग आसमान रूपी छत, वस्त्र के तौर पर जंगली पेड़ों के पत्तों और आभूषणों के रूप में जंगली घास का इस्तेमाल करते रहे. बाद में एक प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र की स्थापना की गई. कई बार स्वास्थ्यकर्मियों को वहां भेजा गया, लेकिन जंगल में आदिम जनजातियों के साथ विषम परिस्थितियों में काम करने की हिम्मत कोई नहीं जुटा पाया और कुछ ही समय में वे वापस भाग आए.

लिटिल अंडमान स्थित डुगोंग क्रीक जाने के लिए पोर्ट ब्लेयर से क़रीब 8 घंटे का सफर फेरी बोट (पानी का मध्यम जहाज) से तय करके हट-बे आइलैंड पहुंचना होता है. इस आइलैंड से अलग एक दूसरे आइलैंड पर स्थित है डुगोंग क्रीक. वहां से भी दो नदियों को पार करके जंगल के रास्ते ओंगी लोगों तक पहुंचा जा सकता है. हट-बे आइलैंड से सागर की उफनती लहरों पर क़रीब 2 घंटे का सफर तय करके डुगोंग क्रीक पहुंचने का एकमात्र साधन डोंगी (छोटी नाव) है. प्रतिबंधित क्षेत्र होने के कारण डोंगी से भी डुगोंग क्रीक जाने की इजाज़त केवल स्वास्थ्यकर्मियों और आदिम जनजाति विकास समिति के प्रतिनिधियों को ही है.

स्वास्थ्य विभाग में एएनएम के पद पर कार्यरत शांति टेरेसा लाकरा ने इस चुनौती को स्वीकार किया और अपने पेशेगत कर्तव्य को सर्वोपरि रखते हुए 2001 में डुगोंग क्रीक में मोर्चा संभाल लिया. ऐसे दूरदराज इलाक़े में काम करते हुए शांति और उनके परिवार को विभिन्न परेशानियों से गुज़रना पड़ा, लेकिन उन्होंने हिम्मत नहीं हारी. गर्भावस्था के दौरान भी वह काम करती रहीं और अपनी जांच भी उन्हें ख़ुद ही करनी पड़ती थी, क्योंकि नज़दीकी स्वास्थ्य जांच केंद्र जाने के लिए जंगल का दुर्गम रास्ता पैदल तय करने के बाद डोंगी में जाना जोख़िमपूर्ण हो सकता था. शांति के बेटे का जन्म इसी दौरान हुआ. सुनामी के बाद की विषम परिस्थितियों को झेल पाने में अक्षम नन्हा बालक कुपोषित होने लगा तो शांति के सास-श्वसुर उसे अपने साथ ले गए. कई सालों तक शांति टेरेसा को अपने मासूम बेटे से दूर रहना पड़ा. शांति बताती हैं कि किस तरह लगातार बरसात और सांपों के बीच टेंट में रहकर एक साल तक उन्होंने अपने बेटे को पाला था. आज उनका बेटा छह साल का है और अपनी दादी को मम्मा कहकर बुलाता है.

बेटे से अलग होने के दर्द को शांति के पति शाजे वर्गीज ने हमेशा अपने प्रोत्साहन से कम करने का प्रयास किया, लेकिन ओंगी जनजाति के लोगों के साथ किए गए अपने प्रयासों के फलीभूत होने के संतोष मात्र से शांति ख़ुद को उनसे दूर न कर सकीं. दिसंबर 2004 में सुनामी का असर ओंगी जनजाति के लोगों पर भी पड़ा और उनके आवास तहस-नहस हो गए, जिसके कारण उन्हें घने जंगल के बीच जाना पड़ा. लोग वहां जंगली सुअरों, मेंढकों और अन्य छोटे जानवरों के शिकार से जीवनयापन करते रहे. शर्मीले स्वभाव, घुंघराले बाल, लाल आंखें एवं गहरे श्याम वर्ण के ओंगी लोगों के साथ जंगल के बीच शांति ने भी अपना बसेरा एक अस्थायी टेंट में जमाया. शांति को घर-घर जाकर माताओं एवं शिशुओं की देखभाल के लिए तैयार किया गया था. कुपोषण एवं खाद्य संक्रमण की आशंका ओंगी समुदाय के लोगों में हमेशा बनी रहती है. परंपरागत तौर पर जंगली सुअर एवं समुद्री कछुओं के शिकार के लिए संक्रमित भाले का उपयोग भी घातक साबित होता है. ज़रूरत पड़ने पर डायरिया, घातक श्वसन संक्रमण, कुपोषण, एनीमिया और मलेरिया जैसे रोगों के इलाज के लिए मरीज़ों को पोर्ट ब्लेयर स्थित जी बी पंत अस्पताल भेजा जाता है. शांति के मुताबिक़, ओंगी अस्पताल जाने के लिए तैयार नहीं होते थे और कहते कि यहीं हमारा इलाज करो.

शांति बताती हैं कि ओंगी सामान्य लोगों से पूरी तरह अलग थे और उनकी भाषा सीखने में काफी समय लगा, लेकिन उनके साथ रहते हुए कभी ऐसा नहीं लगा कि वे किसी तरह का नुक़सान पहुंचा सकते हैं. वह एक मानसिक रोगी को अपने हाथों से खाना खिलाती थीं, जबकि पूरी बस्ती खाली हो गई थी, लेकिन उसने उन्हें कभी चोट पहुंचाने की कोशिश नहीं की. सिर्फ़ आदिम जनजाति विकास विभाग का स्टाफ वहां तैनात था. बातचीत करने के लिए भी शांति का कोई हमसफ़र डुगोंग क्रीक में नहीं था. आज उन पलों को याद करके शांति सिहर उठती हैं. नम आंखों से कहती हैं कि वह अकेली वहां पुरुषों के बीच रहती थीं. रजनी नामक महिला का ज़िक्र करते हुए वह बताती हैं कि उसे प्रीमेच्योर डिलीवरी हुई थी और मां एवं बच्चे दोनों की जान ख़तरे में थी. शांति ने धैर्यपूर्वक काम लेते हुए नौसेना के हेलीकॉप्टर की मदद से रजनी और उसके बच्चे को पोर्ट ब्लेयर भिजवाया, जहां दोनों की जान बच गई. इस तरह की घटनाओं से शांति को ऊर्जा मिलती रही.

हाल में 24 नर्सों को उनके सराहनीय कार्यों के लिए नेशनल फ्लोरेंस नाइटिंगल अवॉर्ड से नवाज़ा गया, शांति भी उनमें एक थीं. प्रशस्ति पत्र, अवॉर्ड और 50 हज़ार रुपये नकद देकर उपराष्ट्रपति हामिद अंसारी ने उन्हें सम्मानित किया. इन सभी नर्सों की प्रतिबद्धता की एक अलग कहानी है, लेकिन इसे विडंबना ही कहा जाएगा कि आज भी नर्सों को डॉक्टरों के अधीन समझा जाता है, जबकि 80 फ़ीसदी उपचारात्मक कार्यों में नर्सों का योगदान रहता है. इसके बावजूद उन्हें चिकित्सक के तौर पर पंजीकृत होने की सहूलियत नहीं दी गई है. शिमला स्थित इंदिरा गांधी अस्पताल की नर्सिंग सुपरिंटेंडेंट के मुताबिक़, एक दवा विक्रेता को एक साल की ट्रेनिंग के बाद लाइसेंस दे दिया जाता है, लेकिन डॉक्टरेट होने के बावजूद नर्स को लाइसेंस नहीं मिल सकता. इतने पर भी इन्हें कोई मलाल नहीं है. यह ज़रूर है कि प्रशस्ति पत्र एवं अवॉर्ड प्रोत्साहित करते हैं, लेकिन उन्हें हासिल करना इनका उद्देश्य कतई नहीं है.

लकड़ी से बने घर के फर्श पर लेटी ओंगी जनजाति की 6 महीने की गर्भवती महिला रजनी बेचैन थी और स्वास्थ्यकर्मी शांति टेरेसा लाकरा उसके पेट पर हाथ फेरकर अजन्मे बच्चे की स्थिति का पता लगा रही थीं. लिटिल अंडमान स्थित डुगोंग क्रीक में सरकार द्वारा जनजातीय समुदाय के लिए बनाए गए एक अन्य घर में गीताई नामक महिला भी लाकरा से अपने नवजात बच्चे की डायरिया जांच के लिए खड़ी थी. नेग्रीटो समूह के आदिम जनजातीय परिवारों के घरों में जाकर स्वास्थ्य जांच का यह काम पहली बार हो रहा था. शांति बताती हैं कि ओंगी लोगों में चर्म रोग, टीबी, लीवर सिरोसिस एवं जलजनित बीमारियां आम थीं और बाहरी लोगों के संपर्क में आने से तंबाकू चबाने की आदत ओंगी पुरुषों को लग गई, जिससे उन्हें श्वास संबंधी बीमारियां होने लगीं.

feedback@chauthiduniya.com

इब्राहिम को अपना पूर्वज मानने वाले तीनों धर्मों की मान्यता है कि ईश्वर ने पैगंबरों के ज़रिए अपना संदेश भेजा. इसके विपरीत हिंदू धर्म का कोई पैगंबर नहीं है और वह शनै: शनै: विकसित हुआ है.

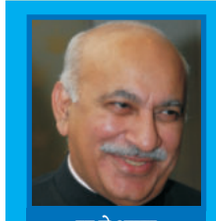

एम जे अकबर

कॉमनवेल्थ गेम्स का खेल से कोई रिश्ता नहीं है

हम कॉमनवेल्थ गेम्स से जुड़े सबसे महत्वपूर्ण तथ्य को शायद नज़रअंदाज़ कर रहे हैं, समस्या खेलों के साथ नहीं है, बल्कि समस्या तो कॉमनवेल्थ के साथ है. कॉमनवेल्थ के गठन की शुरुआत में ब्रिटेन खेलों के आयोजन को लेकर गंभीर रहता था, क्योंकि यह उपनिवेशों की प्रगति को जानने का एक अच्छा ज़रिया था, लेकिन अब तो महारानी की भी इसमें कोई रुचि नहीं है. उन्हें राष्ट्रमंडल में शामिल उन देशों के समूह से कोई मतलब नहीं, जो साम्राज्य के अंग नहीं हैं, उनसे आदेश नहीं लेते और सभ्यता–संस्कृति एवं आर्थिक समृद्धि के लिहाज़ से एक–दूसरे से बिल्कुल अलग हैं. फिर उसैन बोल्ट की भला इसमें क्या रुचि हो सकती है. राष्ट्रमंडल खेलों में भाग लेने से न तो उन्हें कुछ ख़ास आर्थिक फ़ायदा मिलेगा, न ही ओलंपिक पदक. सच्चाई यह है कि राष्ट्रमंडल खेल दूसरे दर्जे के खिलाड़ियों के लिए सबसे प्रतिष्ठित प्रतियोगिता है. यह भी संभव है कि कैटरीना कैफ राष्ट्रमंडल खेलों की सबसे उम्दा एथलीट साबित हों. कैटरीना सौ मीटर की दौड़ में बेशक पीछे रह जाएं, लेकिन सौ मीटर के लटकों–झटकों में उनका कोई सानी नहीं. इसमें भी कोई संदेह नहीं कि दो सप्ताह तक चलने वाले इस तमाशे में उनका नृत्य प्रदर्शन ही सबसे लुभावना और रोचक स्पर्धा साबित होने वाला है. कॉमनवेल्थ गेम्स का खेलों से पहले ही कोई रिश्ता नहीं था. यह दरअसल दिल्ली के शासक वर्ग के लिए राष्ट्रीय खजाने के एक बड़े हिस्से को अपनी मनमर्जी से ख़र्च करने का एक सुनहरा मौक़ा है. राष्ट्र की प्रतिष्ठा के नाम पर इस धन को राजधानी के केवल उन्हीं हिस्सों में इस्तेमाल किया जाना है, जहां संभ्रांत वर्ग के लोगों का निवास है. देशभक्ति चाहे कितनी भी अच्छी क्यों न हो, लेकिन यह नीच लोगों का आख़िरी हथियार भी है. देशभक्ति के नाम पर स्वार्थी तत्वों ने एक बड़ी रकम की हेराफेरी कर दी, जिसके सबूत अब अख़बारों की सुर्ख़ियां बन रहे हैं.

आयोजन की असफलता के लिए दुआएं मांग रहे मणिशंकर अय्यर जैसे बड़बोले आलोचक तो ख़ुद ही एक जाल में फंसने का जोखिम ले रहे हैं. ख़ैर आपकी ख्वाहिश क्या है, एक अच्छा मानसून या राष्ट्रमंडल खेलों का सफल आयोजन? पब्लिक रिलेशंस का एक पुराना सिद्धांत है, उम्मीदों को जानबूझ कर इतना कम कर दो कि यदि आयोजन आधा भी सफल रहे तो उसे जीत के रूप में प्रचारित किया जा सके और आत्म प्रशंसा एवं बधाइयों की बाढ़ में भ्रष्टाचार के सारे कुकृत्य धुल जाएं. यदि आप यह सोच रहे हैं कि 35,000 करोड़ रुपये ख़र्च करने के बाद आयोजक एकाध स्टेडियमों का पुनरुद्धार करने में भी कामयाब नहीं होंगे, तो आप आला दर्जे के बेवकूफ हैं. आख़िर, हमें भ्रष्ट लोगों की बुद्धिमत्ता को कम करके नहीं आंकना चाहिए. इसलिए आप राष्ट्रमंडल खेलों का आयोजन बिना किसी ख़ास अवरोध के संपन्न होने की उम्मीद कर सकते हैं. मानसून ख़त्म होने के बाद मौसम की हालत में सुधार हो चुका होगा, सड़कों पर यातायात का दबाव कम होगा, क्योंकि दिल्लीवासी छुट्टियां मना रहे होंगे और पर्यटक इस दौरान आएंगे नहीं, अंतिम समय में मुंहमांगी क़ीमतों पर किए गए क़रार की मदद से खिलाड़ियों को खाना–पीना मिलने में दिक़्क़त नहीं आएगी और 40 करोड़ की लागत से तैयार किया गया विशाल गुब्बारा हवा में लहराते हुए कैटरीना के ठुमकों को लेजर किरणों की चमक उपलब्ध कराएगा. अब यह बात और है कि बहुरंगे प्रकाश में चमकते इस गुब्बारे पर विवादों के न जाने कितने धब्बे होंगे. खेल तो बेहतरीन उद्घाटन और समापन समारोहों के बीच बोर करने वाली स्पर्धा मात्र बनकर रह जाएगा.

राष्ट्रमंडल देशों में सबसे प्रमुख ब्रिटेन के प्रधानमंत्री डेविड कैमरन क्या उद्घाटन समारोह के दौरान दिल्ली में नज़र आएंगे? ऐसा नहीं होगा,

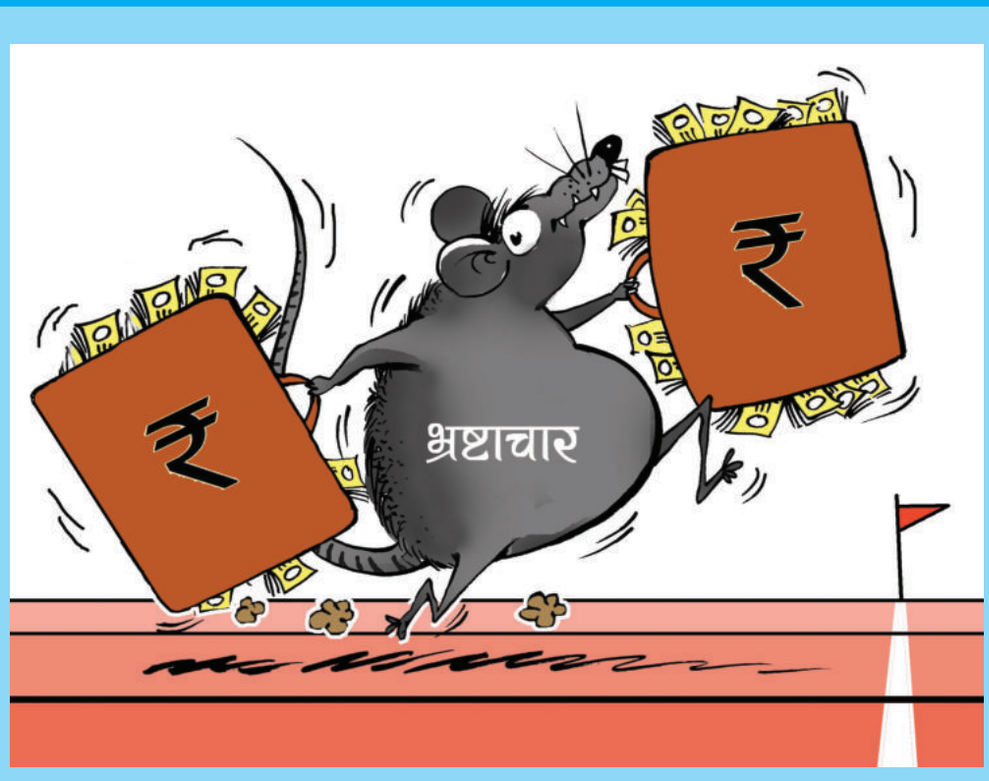

क्योंकि जुलाई के आख़िरी सप्ताह में भारत के सफल दौरे पर आए कैमरन इसके संकेत दे चुके हैं कि बेतरतीब ढंग से आयोजित एक खेल समारोह में शामिल होने के बजाय वह दोनों देशों के बीच अच्छे संबंधों को लेकर प्रयासरत हैं. इससे कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता कि ब्रिटेन ही राष्ट्रमंडल का जन्मदाता है. कैमरन की इस यात्रा के दौरान एक ही चीज खटकने वाली थी, हम उन्हें कैमरन की जगह बार–बार कैमरून कहते रहे. इसकी वजह यह है कि हम खेलों के एक और विशाल आयोजन, जो हाल के दिनों में ही संपन्न हुआ और काफी सफल भी रहा, फुटबॉल विश्व कप के प्रभाव में थे. लेकिन अगली बार जब वह भारत आएंगे, तब तक यह खुमारी उतर चुकी होगी. भारत और ब्रिटेन के बीच अच्छे संबंध इतिहास की सफलतम कहानियों में से एक हैं. यहां मैं महात्मा गांधी और कस्तूरबा के बीच हुई एक बातचीत की याद दिलाना चाहूंगा. यह वाकया 1942 का है, जब भारत छोड़ो आंदोलन की शुरुआत के बाद दोनों को आख़िरी बार एक साथ गिरफ़्तार किया गया था और वे पुणे की जेल में कैद थे. बढ़ती उम्र और एक जिद्दी पति के साथ रहते हुए बा कमज़ोर पड़ती जा रही थीं. एक बार जब वह गंभीर रूप से बीमार थीं तो अपने पति को यह कहकर कोसने लगी कि उन्होंने नाहक ही ग़रीब और कमज़ोर भारतीयों को ब्रिटिश राज की ताक़त के मुक़ाबले में खड़ा कर दिया. कस्तूरबा ने गांधी से यह पूछा कि वह अंग्रेजों को भारत से भगाना क्यों चाहते हैं. भारत एक बड़ा देश है और अंग्रेज यहां रह सकते हैं, शासक के रूप में नहीं, बल्कि भाई की तरह. गांधी ने जवाब दिया कि अंग्रेजों को यही बात बताने की कोशिश तो वह भी कर रहे हैं.

कस्तूरबा हालांकि स्वतंत्रता हासिल होने से पहले ही स्वर्ग सिधार गईं, लेकिन यदि आज ज़िंदा होतीं तो निश्चित रूप से काफी ख़ुश होतीं. भारत और ब्रिटेन के लोग वास्तव में आज भाई–भाई बन गए हैं. अमेरिका और ब्रिटेन तो केवल सहयोगी हैं. उसमें भी, जैसा कि अपनी वाशिंगटन यात्रा के दौरान कैमरन ने स्वीकार किया, ब्रिटेन कनिष्ठ सहयोगी है. भारत और ब्रिटेन के बीच संबंधों में कोई वरिष्ठ नहीं है. एक जमाना था, जब स्कॉटलैंड की जूट मिलें भारतीयों को नौकरी उपलब्ध कराने में अव्वल थीं, लेकिन आज ब्रिटेनवासियों के लिए टाटा सबसे बड़ा नियोक्ता बन चुका है. भारत और ब्रिटेन के आपसी संबंधों का एक भावनात्मक पक्ष भी है, भले ही इसे दोनों देश सार्वजनिक रूप से स्वीकार न करें. अटलांटिक के दोनों ओर राजनीतिक बंधन ज्यादा मजबूत भले हों, लेकिन भारत और ब्रिटेन सांस्कृतिक निकटता के अदृश्य बंधनों से जुड़े हुए हैं. करी खाने के मौक़े हों तो कैमरन बिना सोचे ही ख़ुशी से ऐसा करने को राजी हो जाएंगे. करी आज जितनी भारत में लोकप्रिय है, उतनी ही ब्रिटेन में भी लोकप्रिय है. अब ज़रा मेयर ब्लूमबर्ग के साथ हॉट बर्गर खाते हुए कैमरन की तस्वीर पर निगाह डालिए, देखकर ही यह लगता है कि कैमरन सहज नहीं हैं. अमेरिका के हर कोने में उपलब्ध हॉट बर्गर उनका पसंदीदा फास्टफूड है. और अब जबकि केंद्रीय कैबिनेट ने 57 ब्रिटिश हॉक्स विमान ख़रीदने का फ़ैसला कर लिया है, स्थितियां और बेहतर ही होने की संभावना है.

feedback@chauthiduniya.com

हिंदू आतंकवाद शब्द अनुचित

जब से प्रज्ञा सिंह ठाकुर एवं दयानंद पांडे आदि द्वारा आतंकी हमलों की साजिश रचने और उन्हें अंजाम देने की ख़बरें सामने आई हैं, तबसे हिंदू आतंकवाद शब्द आम प्रचलन में आ गया है. विभिन्न एजेंसियों द्वारा की गई जांच से यह पता लगा है कि हिंदू राष्ट्र एवं हिंदुत्व की विचारधारा से प्रेरित उक्त संगठन मालेगांव, मक्का मस्जिद, अजमेर, गोवा एवं समझौता एक्सप्रेस धमाकों के पीछे हो सकते हैं. इन संगठनों में बजरंग दल, अभिनव भारत एवं सनातन संस्था आदि शामिल हैं. इसके विपरीत हिंदुत्व की राजनीति के झंडाबरदारों का कहना है कि हिंदू धर्म को आतंकवाद से जोड़ना पूर्णत: अनुचित है, क्योंकि आतंकवाद पर केवल उन धर्मों का एकाधिकार है, जिनके पैगंबर हुए हैं अर्थात इस्लाम, ईसाई और यहूदी धर्म. कुछ टिप्पणीकार कहते हैं कि इन तीनों धर्मों के अनुयायियों का धार्मिक आतंकवाद का लंबा इतिहास रहा है, जबकि हिंदुओं ने कभी आतंक का सहारा नहीं लिया. ईसाई, यहूदी एवं इस्लाम धर्म में तीन समानताएं हैं. पहली यह कि उनके अनुयायी स्वयं को इब्राहिम की संतान मानते हैं. दूसरी, तीनों धर्म एकेश्वरवादी हैं और तीसरी यह कि उनकी एक ही धार्मिक पुस्तक है.

इब्राहिम को अपना पूर्वज मानने वाले तीनों धर्मों की मान्यता है कि ईश्वर ने पैगंबरों के ज़रिए अपना संदेश भेजा. इसके विपरीत हिंदू धर्म का कोई पैगंबर नहीं है और वह शनै: शनै: विकसित हुआ है. समय के साथ नई परंपराएं एवं पंथ उसके हिस्से बनते गए. इन परंपराओं में वैदिक, उत्तर वैदिक, मध्यकालीन एवं आधुनिक परंपराएं शामिल हैं. कोई हिंदू नास्तिक भी हो सकता है, एकेश्वरवादी भी और कई भगवानों में आस्था रखने वाला भी. हिंदू धर्म के सिद्धांतों के इसी लचीलेपन एवं उदारता का फ़ायदा उठाकर कुछ तत्व अपने बेहूदा विचारों को भी इसका हिस्सा घोषित कर देते हैं. धर्म एक जटिल संस्था है. इसमें धार्मिक संस्थान, पवित्र पुस्तकें, रीति–रिवाज, रूढ़ियां एवं परंपराएं शामिल हैं. इन सबका हमेशा एक–दूसरे से मेल खाना न तो संभव है और न आवश्यक. धार्मिक शिक्षाओं की व्याख्या तत्कालीन सामाजिक संदर्भों में की जानी चाहिए. हर धर्म शांति एवं सद्भाव को महत्व देता है, परंतु साथ ही हर धर्म में हिंसा को औचित्यपूर्ण ठहराने वाले तत्व भी हैं. बहुत कुछ इस बात पर भी निर्भर करता है कि किसी धार्मिक सिद्धांत की व्याख्या कौन और किस उद्देश्य से कर रहा है. एक ही उदाहरण की कई व्याख्याएं की जा सकती हैं. इब्राहिम को अपना पूर्वज मानने वाले धर्मों में हिंसा की यत्र–तत्र चर्चा मात्र से उक्त धर्म हिंसा एवं आतंक के प्रणेता नहीं बन जाते. हिंसा और आतंक की जन्मदाता सामाजिक परिस्थितियां होती हैं, धार्मिक सिद्धांत नहीं. कई बार शासक एवं राजा अपने साम्राज्य का विस्तार करने की अपनी महत्वाकांक्षा को क्रूसेड, जिहाद या धर्मयुद्ध का नाम देकर उस पर धर्म का मुलम्मा चढ़ा देते हैं. हिंदू धर्म एक ओर तो वसुधैव कुटुंबकम की बात करता है तो दूसरी ओर जाति प्रथा के रूप में हिंसा उसके मूल ढांचे का हिस्सा है. वेदों से लेकर मनु स्मृति तक

में वर्ण व्यवस्था एवं जाति प्रथा का उल्लेख है और कुछ साधु–संत आज भी जाति प्रथा को औचित्यपूर्ण ठहराते हैं. महाभारत में भगवान कृष्ण स्वयं अर्जुन से अपना धार्मिक कर्तव्य पूरा करने के लिए हथियार उठाने का आह्वान करते हैं. रामायण में हिंदू धर्म के रक्षार्थ भगवान राम शंबूक का वध करते हैं. हिंदू धर्म की रक्षा के लिए पुष्यमित्र शुंग ने बौद्धों का नरसंहार किया था. आज भी धार्मिक एवं जातिगत परंपराओं के नाम पर खाप पंचायतें युवा जोड़ों का क़त्ल कर रही हैं. मंगलोर के पब में लड़कियों की इसलिए पिटाई की गई, क्योंकि वे हिंदू परंपराओं के विरुद्ध आचरण कर रही थीं. अल्पसंख्यकों के विरुद्ध हिंसा इस आधार पर भड़काई जाती है कि हिंदू धर्म ख़तरे में है और उसकी रक्षा की जानी चाहिए. विभिन्न धर्मों के कई अनुयायियों का आचरण धर्मसम्मत नहीं होता. आख़िर एडोल्फ हिटलर और नेल्सन मंडेला एक ही धर्म के थे. महात्मा गांधी और नाथूराम गोडसे का धर्म एक था. खान अब्दुल गफ्फार खान और ओसामा बिन लादेन एक ही धर्म के अनुयायी थे. यह सोचना पूरी तरह से ग़लत है कि हिंसा के पीछे धर्म होता है. दुर्भाग्यवश आज की दुनिया में अमेरिका की तेल संसाधनों पर क़ब्ज़ा करने की लिप्सा ने जिस राजनीति को जन्म दिया है, वह धर्म का लबादा ओढ़े हुए है. अमेरिका द्वारा स्थापित मदरसों में ही इस्लाम की दो महत्वपूर्ण अवधारणाओं, काफिर एवं जिहाद को विकृत अर्थ दिया गया, ताकि अफ़ग़ानिस्तान से रूसी सेनाओं को खदेड़ने के लिए अलक़ायदा के लड़ाकों को तैयार किया जा सके. अमेरिकी मीडिया ने इस्लामिक आतंकवाद शब्द गढ़ा और उसे प्रचारित किया. इस शब्द का इतना उपयोग किया गया कि यह सामूहिक सामाजिक सोच का हिस्सा बन गया और आमजन हिंसा को एक धर्म विशेष से जोड़ने लगे. ऐसे में यह स्वाभाविक था कि जब हिंदू राष्ट्र के पैरोकार कुछ हिंदू संगठनों की आतंकी घटनाओं में संलिप्तता सामने आई तो कुछ पत्रकारों ने हिंदू आतंकवाद शब्द का प्रयोग करना शुरू कर दिया. हिंदू आतंकवाद शब्द का उपयोग उतना ही ग़लत है, जितना इस्लामिक आतंकवाद या ईसाई आतंकवाद का. ईसाइयत भी शांति की बात करती है और इस्लाम भी अल्लाह के प्रति समर्पण के ज़रिए शांति की स्थापना का पक्षधर है. इस सिलसिले में गांधी जी के जीवन को हम धार्मिक शिक्षाओं के अनुरूप आचरण का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण कह सकते हैं. ओसामा एवं गोडसे के राजनीतिक लक्ष्य थे, जिन पर उन्होंने धर्म का मुलम्मा चढ़ाया. साध्वी प्रज्ञा सिंह ठाकुर, दयानंद पांडे एवं अन्य के गिरोह की कारगुज़ारियों के बावजूद हमें उनकी कुत्सित हरकतों को हिंदू आतंकवाद की संज्ञा देने से बचना चाहिए. धर्म को राजनीति ही नहीं, आतंकवाद से भी अलग रखा जाना आवश्यक एवं वांछनीय है.

(लेखक आईआईटी, मुंबई के पूर्व प्राध्यापक हैं)

राम पुनियानी
feedback@chauthiduniya.com

दूर की तस्वीर

आवरण कथा–एक बम दिल्ली ख़त्म (2–8 अगस्त) के माध्यम से चौथी दुनिया ने केवल राजधानी दिल्ली ही नहीं, बल्कि पूरे देश को उस अनहोनी के प्रति सचेत किया है, जिसकी ओर हमारा ध्यान रंचमात्र नहीं है. हम यह सोच भी नहीं सकते थे कि अगर वैसा कुछ कभी हो जाए तो क्या होगा. आपने तो उससे भी दूर की तस्वीर पेश कर दी और उस स्थिति में हमारी सरकार कितने इंतज़ाम–बचाव कर सकेगी, इस पर रोशनी डाल कर आपने स्टोरी को और भी महत्वपूर्ण बना दिया है.

– समीर किशोर, *नई दिल्ली.*

नकली नोट और भारत

विदेशों में नोटों की छपाई से उपजी आशंकाएं गलत नहीं हैं. उससे भी ज़्यादा दु:ख की बात यह है कि इस मामले में तत्कालीन वित्तमंत्री चिदंबरम एवं रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया ने पूरे देश और संसद को अंधेरे में रखा. आज नकली नोटों की वजह से जनसाधारण को कितनी दिक्कतें पेश आ रही हैं, यह किसी से छिपा नहीं है. देश की अर्थव्यवस्था को भी गहरी चोट पहुंच रही है.

–अमित त्रिपाठी, *ई–मेल से.*

धांधली पर रोशनी

सरकारी को–ऑपरेटिव मैनेजमेंट संस्थान में व्याप्त भ्रष्टाचार पर आधारित रिपोर्ट हर तरफ धांधली ही धांधली ने विषय पर बख़ूबी रोशनी डाली है. बिना अनुमति दीगर कामों को अंजाम देकर वहां किस तरह नियम–कानूनों का उल्लंघन किया जा रहा है, यह चिंता का विषय है. सरकार को इस ओर अवश्य ध्यान देना चाहिए.

–गुरु प्रसाद अग्रवाल, *ग्वालियर, मध्य प्रदेश.*

ज्ञानवर्द्धक आलेख

आलेख–अंडमानी समाज और प्रवासी जनजातियों का जीवन खासा ज्ञानवर्द्धक बन पड़ा है. लेखक ने हजारों किलोमीटर दूर स्थित अंडमान–निकोबार में जनजातीय समुदाय की दुर्दशा का बेबाक वर्णन किया है. उपेक्षा की मार झेल रहे उक्त समुदाय के लोगों की नाराज़गी एक दिन चिंता का विषय बन सकती है, इसलिए केंद्र सरकार को शीघ्र ही कोई कारगर कदम उठाना चाहिए.

–रजनी थपलियाल, *देहरादून, उत्तराखंड.*

विक्रमशिला की उपेक्षा

कितने अफसोस की बात है कि ऐतिहासिक महत्व का विश्वविद्यालय विक्रमशिला आज अपनी बदहाली पर आंसू बहा रहा है और सरकार इस ओर ध्यान नहीं दे रही है. कभी दुनिया के प्रमुख शिक्षा केंद्रों में शुमार होने वाला विक्रमशिला विश्वविद्यालय इस तरह उपेक्षा का शिकार होगा, किसी ने सपने में भी नहीं सोचा था. राज्य एवं केंद्र सरकार को इस दिशा में अवश्य कोई कारगर पहल करनी चाहिए.

–रामेंद्र सिंह यादव, *गया, बिहार.*

सिक्के का दूसरा पहलू

अफ्फाक अज़हर का लेख–महिलाओं पर अत्याचार पढ़ा. इसमें जी भरकर मर्दों को कोसा गया है. यह बात थोपने की कोशिश की गई है कि मर्द सिर्फ़ औरतों पर जुल्म करते हैं. लेकिन यह सिक्के का एक पहलू है, इसके साथ ही एक तल्ख सच्चाई यह भी है कि महिलाओं द्वारा भी पुरुषों का जमकर उत्पीड़न किया जाता है. दहेज उत्पीड़न क़ानून का सहारा लेकर महिलाएं बेवजह पति और उसके घरवालों पर अत्याचार कर बैठती हैं. अफसोस की बात तो यह है कि लोगों को सिर्फ़ मर्दों के जुल्म दिखते हैं, महिलाएं क्या कर रही हैं, इस पर किसी का भी ध्यान नहीं जाता.

–शिबली रामपुरी, *सहारनपुर, उत्तर प्रदेश.*

ग़ैर ज़िम्मेदार मीडिया

भारतीय मीडिया अपनी राह से भटक रहा है. 12–18 जुलाई के अंक में ग़ैर ज़िम्मेदार मीडिया शीर्षक से प्रकाशित आलेख इसी सच्चाई पर आधारित है. यह कैसा विरोधाभास है कि आतंकवादियों–अपराधियों की मौत और उनके कारनामों की ख़बरों को बढ़ा–चढ़ाकर पेश किया जाता है, जबकि सामान्य जन एवं पुलिस के अच्छे कामों को भी नजरअंदाज कर दिया जाता है. कोई सरकार अपनी सालगिरह मनाती है तो उसकी उपलब्धियों को छाप दिया जाता है, लेकिन जो काम नहीं हुए और जो काम हुए, उनमें क्या कमी है, इस पर मीडिया का ध्यान नहीं जाता. इसलिए कहना पड़ता है कि मीडिया पैसों की चकाचौंध में रास्ता भटक गया है.

–शंकर शर्मा, *चिलमिल–बेगूसराय, बिहार.*

बधाई

चौथी दुनिया का 21–27 जून वाला अंक देखा, प्रसन्नता हुई. यह प्रत्येक दृष्टि से अच्छा लगा. बधाई.

–मदन मोहन मानव, *पत्रकार*
परिवार–मथुरा, उत्तर प्रदेश.

आप अपने स्वतंत्र विचार तथा प्रतिक्रियाएं हमें इसी पते पर भेजें.
संपादक, चौथी दुनिया, एफ-2, सेक्टर-11 नोएडा, (उत्तर प्रदेश) पिन-201301
ई-मेल पता : feedback@chauthiduniya.com

इस एमओयू की समय सीमा 22 जून, 2010 को समाप्त हुई है, जबकि कंपनी अब तक कोई काम नहीं कर पाई है. करारनामे की समयावधि खत्म होने का एक अलग महत्व भी है.

जब तोप मुक़ाबिल हो

संतोष भारतीय

महंगाई पर संसद का रवैया हैरान करता है

कहना बहुत सख्त होगा, और हो सकता है कुछ लोगों को बहुत बुरा भी लगे, पर सच्चाई यह है कि संसद इस देश के आम आदमी के दर्द का मज़ाक उड़ा रही है. सात दिनों तक लोकसभा और राज्यसभा नहीं चली, क्योंकि विपक्ष जिस नियम के तहत महंगाई पर बहस चाहता था सरकार उस पर कराने के लिए तैयार नहीं थी, क्योंकि तब मत विभाजन होता और सरकार शायद हार जाती. सरकार के अस्तित्व को तो कोई ख़तरा नहीं होता, लेकिन उसके लिए स्थिति शर्मनाक होती. सात दिनों बाद जब बहस हुई तो इस समझौते के साथ कि अध्यक्ष लोकसभा में और सभापति राज्यसभा में एक प्रस्ताव रखेंगे जिसमें महंगाई पर चिंता जताई जाएगी. ऐसा ही हुआ भी.

बहस में विपक्ष की नेता सुषमा स्वराज का भाषण तो अच्छा था पर उन्होंने सरकार से मांग की कि कुछ तो पेट्रोलियम पदार्थों की क़ीमत कम की जाए जिससे देश के लोगों को लगे कि सरकार गंभीर है. मुलायम सिंह ने कहा कि एक हज़ार परिवारों को अलग कर देखा जाए कि महंगाई का असर किस पर कितना है और लालू यादव ने कहा कि गेहूं भी महंगा होगा, क्योंकि जानबूझ कर इसे बारिश में सड़ाया जा रहा है ताकि इसे बीयर बनाने के लिए लगभग मुफ्त में दिया जा सके.

बातें और चिंता अच्छी लगीं पर इनका सरकार पर कोई असर नहीं हुआ. वित्तमंत्री ने सारे तर्क महंगाई के बचाव में दिए. दरअसल सरकार को लगता है कि महंगाई अब जीवन शैली बन गई है, कुछ दिन लोग हाय–तौबा करेंगे और फिर चुप हो जाएंगे. इसीलिए सरकार हिम्मत के साथ, शर्म लिहाज़ छोड़ मंहगाई के पक्ष में तो बोल ही रही है, बल्कि वित्तमंत्री और प्रधानमंत्री कह रहे हैं कि अभी महंगाई और बढ़ेगी तथा दिसंबर के बाद शायद कुछ कम हो.

विपक्ष ने एक दिन का भारत बंद किया और एक दिन संसद में बहस की. उसे लगता है कि उसका कर्तव्य पूरा हो गया. इसके बाद अगर कुछ हो रहा है तो टेलीविज़न में बहस हो रही है और एक दूसरे के ख़िलाफ़ तर्क दिए जा रहे हैं. इसका शिकार आम आदमी देख रहा है कि गाल तो बजाए जा रहे हैं लेकिन कोई भी महंगाई कम करने या कराने में रुचि नहीं रखता. इस बहस में एक नया राजनीतिक पैंतरा भी देखने को मिला. बहुजन समाज पार्टी ने बहस शुरू करते हुए पहला वाक्य कहा कि वह सरकार को परेशानी में नहीं डालना चाहती. उसने इशारा कर दिया कि अगर वोट होता तो महंगाई पर ज़ुबानी विरोध के बाद वोट वह कांग्रेस को देती. इसे राहुल गांधी की उत्तर प्रदेश में कांग्रेस को मज़बूत करने की कोशिश को ख़त्म करने के रूप में देखा जाना चाहिए. कांग्रेस के वरिष्ठ नेताओं ने सोनिया गांधी को इस बार भी डरा दिया कि सावधानीवश बसपा को साथ लेना चाहिए अन्यथा वोट हुआ, हार हुई तो शर्मनाक स्थिति हो जाएगी.

कांग्रेस से पहले शरद पवार ने देश में महंगाई बढ़ाने वाले बयान दिए. अनाज, सब्ज़ी और दूध के दाम बढ़ाने में शरद पवार ने अमूल्य योगदान दिया और उनके ख़िलाफ़ देश में कोई आंदोलन नहीं हुआ. अब वित्तमंत्री और प्रधानमंत्री कह रहे हैं कि महंगाई और बढ़ेगी. विपक्ष इनके ख़िलाफ़ भी कुछ नहीं करने जा रहा.

कौन सी जाति है, या जाति की उपजाति है, या कौन सा धर्म है जिसके मानने वालों को महंगाई नहीं सता रही. हां, जाति या धर्म के नेताओं को महंगाई नहीं सता रही. पहले के नेता अपने को छोड़ समूह के दर्द को महसूस करते थे, पर आज के नेता अपने अलावा किसी का दर्द महसूस नहीं करते.

विपक्ष में मुलायम सिंह, शरद पवार, लालू यादव, वामपंथी दलों के नेता और किसी हद तक सुषमा स्वराज भी जीवन के सुनहरे काल में आंदोलनों की सतत शृंखला के अटूट अंग रहे हैं. उन्हीं आंदोलनों की वजह से, जिसमें जनता ने उन्हें अपने हितों के लिए लड़ने वाला सिपाही माना, ये सारे आज लोकसभा में हैं. लोकसभा में होना महत्वपूर्ण है, पर उससे महत्वपूर्ण है उनका जनता की समस्याओं से सरोकार का होना– कम से कम जनता तो ऐसा ही समझती है.

लेकिन अब ये सारे नेता, चाहे जिस दल में हों बिल्कुल एक सी भाषा, एक से विचार और एक से चेहरे वाले लगते हैं. अब इनका विश्वास जनता को गोलबंद कर, उसे संगठित कर, सरकार को समस्याओं के हल के लिए विवश करना नहीं है, बल्कि ये सरकार के तर्कों को सही साबित करने के लिए आधार बना देते हैं. जनता अपने आप खड़ी नहीं होती और अब उसके आंसू पोंछने वाला या उसे संगठित करने वाला न कोई राजनैतिक दल है और न कोई राजनेता.

इसी का परिणाम है कि देश में नक्सलवाद बढ़ रहा है. ग़रीब को लगता है कि सारे राजनैतिक दल ठगों के समूह में बदल गए हैं तथा उसके दर्द का, उसकी भूख का व्यापार भी कर रहे हैं और मज़ाक भी उड़ा रहे हैं, तो वह उनका साथ देने लगता है जो हथियारों के बल पर उसकी समस्या का समाधान करने का वायदा कर रहे हैं. मज़े की बात है कि जहां ये हैं, वहां राजनैतिक दलों की गतिविधियां सिमटी–सिमटी सी हैं.

गांधी जी का नाम, लोहिया जी व जयप्रकाश जी का नाम अब भारतीय विपक्ष के लिए पूज्य नहीं रहा. जब नाम ही पूज्य नहीं रहा तो उनका बताया रास्ता तो अब इनके किसी काम का रहा ही नहीं. इसीलिए देश में राजनैतिक तंत्र के प्रति अविश्वास बढ़ रहा है.

कौन सी जाति है, या जाति की उपजाति है, या कौन सा धर्म है जिसके मानने वालों को मंहगाई नहीं सता रही. हां, जाति या धर्म के नेताओं को मंहगाई नहीं सता रही. पहले के नेता अपने को छोड़ समूह के दर्द को महसूस करते थे, पर आज के नेता अपने अलावा किसी का दर्द महसूस नहीं करते. वह समय बहुत दूर नहीं है जब जनता अपना रास्ता अलग चुनने के लिए मजबूर हो जाएगी. हो सकता है वह रास्ता लोकतंत्र की परिभाषा में न आता हो. पर आज जो कुछ सरकार और विपक्ष कर रहा है, वह भी तो लोकतंत्र के लिए अच्छा नहीं है.

संपादक
editor@chauthiduniya.com

पॉस्को परियोजना : विरोध और स्वीकृतियों का इतिहास

कांची कोहली

कई बार कुछ खास तारीखें इतिहास में अहम बनकर रह जाती हैं. 28 जुलाई, 2010 को केंद्रीय वन एवं पर्यावरण मंत्रालय ने मौजूदा दौर की सबसे ज्यादा विवादित रही औद्योगिक परियोजनाओं में से एक के प्रस्तावित स्थल पर अनुसूचित जनजातियों एवं अन्य वनवासियों के फॉरेस्ट राइट्स एक्ट 2006 के क्रियान्वयन की समीक्षा के लिए एक चार सदस्यीय कमेटी का गठन किया. दक्षिण कोरिया की पॉस्को कंपनी द्वारा करीब 54,000 करोड़ रुपये के निवेश के साथ यह परियोजना उड़ीसा में प्रस्तावित है. वर्ष 2005 में कंपनी ने राज्य सरकार के साथ मिलकर स्टील प्लांट और इसके निमित्त एक बंदरगाह के साथ सड़कों एवं खदानों के विकास के रूप में तमाम तरह की आधारभूत संरचनाओं के निर्माण का काम शुरू किया था. परियोजना की सफलता के लिए बाद के सालों में भी लगातार प्रयास होते रहे.

लेकिन रोचक तथ्य यह है कि सरकार द्वारा इस कमेटी का गठन ऐसे समय में किया गया है, जबकि पॉस्को और उड़ीसा सरकार के बीच हुए एमओयू की समय सीमा खत्म हुए करीब एक महीने का समय गुजर चुका है. इस एमओयू की समय सीमा 22 जून, 2010 को समाप्त हुई है, जबकि कंपनी अब तक कोई काम नहीं कर पाई है. करारनामे की समयावधि खत्म होने का एक अलग महत्व भी है. यह दरअसल इस परियोजना के खिलाफ स्थानीय लोगों के संघर्ष की सफलता का सबूत भी है. यह हालत तब है, जबकि एमओयू में हर चीज के लिए प्रावधान किया गया था. राज्य सरकार ने कंपनी से यह वादा किया कि वह परियोजना को हरसंभव मदद उपलब्ध कराएगी, सामानों की आपूर्ति सुनिश्चित करेगी और सिंगल विंडो स्कीम के तहत संबंधित सरकारी विभागों से अनुमति भी दिलाएगी.

ऐसा बताया जाता है कि पॉस्को ने इस परियोजना के लिए स्पेशल इकोनॉमिक जोन (एसईजेड) स्टेटस की मांग की थी. इस मांग को पूरा करने में हुई देरी को देख कंपनी एमओयू में शामिल परियोजना के अलग–अलग हिस्सों के लिए

परियोजना से प्रभावित होने वाले स्थानीय लोग बड़ी संख्या में इसमें शरीक हुए और उन्होंने अपना विरोध दर्ज कराया, लेकिन विरोध के स्वर वन एवं पर्यावरण मंत्रालय के अधिकारियों को रास नहीं आए और इसके ठीक बाद स्टील प्लांट एवं बंदरगाह के निर्माण को एन्वॉयरोन्मेंटल क्लियरेंस दे दिया गया. ऐसा तब किया गया, जबकि इन दोनों के निर्माण का स्थानीय लोग शुरू से ही विरोध कर रहे थे. प्रारंभ में विरोध के स्वर छिटपुट रहे, लेकिन पॉस्को प्रतिरोध संघर्ष समिति (पीपीएसएस) के गठन के बाद विरोध को एक संगठित रूप मिला. पीपीएसएस का विरोध अभी भी जारी है. जमीन अधिग्रहण के लिए जिला प्रशासन द्वारा नवंबर 2005 में ही नोटिस जारी कर दी गई थी, लेकिन स्थानीय लोगों द्वारा इलाके की घेराबंदी के चलते जिला प्रशासन और कंपनी के अधिकारियों के मंसूबे पूरे नहीं हो पाए.

अलग–अलग स्वीकृति लेने की कोशिश करने लगी. इसमें सबसे पहला नाम बंदरगाह और स्टील प्लांट का था. एन्वॉयरोन्मेंट इंपैक्ट असेसमेंट नोटिफिकेशन 2006 के अंतर्गत कंपनी ने इन दोनों के लिए अलग–अलग आवेदन दिए थे. इसी बीच 15 अप्रैल, 2007 को कुजांग के बन बिहारी हाईस्कूल मैदान में इन दोनों प्रस्तावों के लिए लोक अदालत लगाई गई. परियोजना से प्रभावित होने वाले स्थानीय लोग बड़ी संख्या में इसमें शरीक हुए और उन्होंने अपना विरोध दर्ज कराया, लेकिन विरोध के स्वर वन एवं पर्यावरण मंत्रालय के अधिकारियों को रास नहीं आए और इसके ठीक बाद स्टील प्लांट एवं बंदरगाह के निर्माण को एन्वॉयरोन्मेंटल क्लियरेंस दे दिया गया. ऐसा तब किया गया, जबकि इन दोनों के निर्माण का स्थानीय लोग शुरू से ही विरोध कर रहे थे. प्रारंभ में विरोध के स्वर छिटपुट रहे, लेकिन पॉस्को प्रतिरोध संघर्ष समिति (पीपीएसएस) के गठन के बाद विरोध को एक संगठित रूप मिला. पीपीएसएस का विरोध अभी भी जारी है. जमीन अधिग्रहण के लिए जिला प्रशासन द्वारा नवंबर 2005 में ही नोटिस जारी कर दी गई थी, लेकिन स्थानीय लोगों द्वारा इलाके की घेराबंदी के चलते जिला प्रशासन और कंपनी के अधिकारियों के मंसूबे पूरे नहीं हो पाए. इसके बाद की जो कहानी है, वह अपने जीवन और जीविका की लड़ाई लड़ रहे लोगों की आवाज को दबाने, जबरदस्ती उनकी जमीन छीनने की अधिकारियों की कोशिशों की कहानी है.

एक ओर जहां स्थानीय समुदायों का प्रतिरोध जारी रहा तो दूसरी ओर केंद्र सरकार के स्तर पर परियोजना को स्वीकृतियों की प्रक्रिया भी चलती रही. फॉरेस्ट कंजर्वेशन एक्ट 1980 के प्रावधानों के तहत स्टील प्लांट और बंदरगाह के निर्माण के लिए 1253.255 हेक्टेयर वन्य क्षेत्र को गैर वन्य कार्यों में इस्तेमाल हेतु उपयुक्त घोषित किया जाना आवश्यक था. यह इसलिए भी जरूरी था, क्योंकि ऐसा किए जाने से 2.8 लाख पेड़ों की कटाई की अनुमति मिल जाती. इस प्रस्ताव पर 9 अगस्त, 2007 को पर्यावरण मंत्रालय द्वारा गठित फॉरेस्ट एडवाइजरी कमेटी (एफएसी) ने विचार किया. कमेटी ने परियोजना के लिए फॉरेस्ट क्लियरेंस की अनुशंसा की, लेकिन यह फैसला अंतिम नहीं था, क्योंकि सुप्रीम कोर्ट के एक फैसले के मुताबिक एफएसी के निर्णय पर अदालत द्वारा नियुक्त सेंट्रल इम्पॉवर्ड कमेटी (सीईसी) द्वारा पुनर्विचार किया जाना आवश्यक था. सीईसी ने एफएसी के फैसले के विपरीत प्रस्ताव की और जांच–पड़ताल का आदेश दिया और जल्दबाजी में क्लियरेंस दिए जाने के खिलाफ आगाह किया. रोचक तथ्य यह है कि चूंकि स्थानीय लोगों ने इलाके की घेराबंदी कर बाहरी लोगों का प्रवेश रोक दिया था, परियोजना के लिए फॉरेस्ट क्लियरेंस की अनुशंसा हवाई सर्वे के आधार पर ही कर दी गई थी. इसका खुलासा तब हुआ, जब वाइल्ड लाइफ सोसायटी ऑफ उड़ीसा से जुड़े विश्वजीत मोहंती ने सूचना अधिकार कानून के तहत आरटीआई दायर किया. विश्वजीत के मुताबिक, पॉस्को को मिला क्लियरेंस वन एवं पर्यावरण मंत्रालय के इतिहास में शायद पहला ऐसा मामला है, जिसमें हवाई सर्वेक्षण के आधार पर फॉरेस्ट क्लियरेंस दे दिया गया. मंत्रालय के क्षेत्रीय सीसीएफ ने अपने नोट में स्पष्ट लिखा है कि कानून व्यवस्था की खराब हालत के चलते इलाके का जमीनी सर्वेक्षण संभव नहीं था और इसलिए उन्हें हवाई सर्वेक्षण के आधार पर ही यह फैसला लेना पड़ा.

feedback@chauthiduniya.com

बादशाह शाहजहां ने अपनी बेगम मुमताज की याद में ताजमहल बना दिया, ताकि उनके प्रेम को दुनिया याद रखे.

सूचना का अधिकार
जानने का अधिकार जीने का अधिकार
चौथी दुनिया की पहल

समस्या, सुझाव और समाधान

एक लोकतांत्रिक देश का नागरिक होने के फ़ायदे तो हैं, लेकिन इस व्यवस्था की अपनी कुछ समस्याएं भी हैं. बावजूद इसके घबराने की ज़रूरत नहीं है, क्योंकि समस्या है तो समाधान भी है. पिछले कुछ दिनों में हमें अपने पाठकों के ढेर सारे पत्र मिले हैं, जो इस बात के सबूत हैं कि हमारे पाठक न सिर्फ़ आरटीआई क़ानून का जमकर इस्तेमाल कर रहे हैं, बल्कि वे अपनी समस्या का समाधान भी इस क़ानून के ज़रिए चाहते हैं. इसके अलावा आरटीआई क़ानून से जुड़े अनुभव भी उन्होंने हमारे साथ बांटे हैं. इस अंक में हम उन्हीं पत्रों को प्रकाशित कर रहे हैं. इसके पीछे हमारा मक़सद अपने सभी पाठकों को विभिन्न तरह की समस्याओं और उनके समाधान से रूबरू कराना है. उम्मीद है, इस अंक में प्रकाशित पत्रों को पढ़कर हमारे पाठकगण लाभांवित होंगे.

ग्रामीण बैंक 25 हज़ार रुपये मांग रहा है

मैंने आरटीआई के तहत उत्तर बिहार क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक मुज़फ़्फ़रपुर से केसीसी से संबंधित सूचनाएं मांगी थीं. 30 दिनों के भीतर जवाब न मिलने पर प्रथम अपील की. फिर भी कोई सूचना नहीं मिली. बाद में एक दिन बैंक की तरफ़ से एक पत्र मिला, जिसमें सूचना उपलब्ध कराने के लिए 25 हज़ार रुपये की मांग की गई. ऐसी स्थिति में मुझे क्या करना चाहिए.

–उमाशंकर सिंह, *औराई, मुज़फ़्फ़रपुर.*

आरटीआई क़ानून में ऐसे लोक सूचना अधिकारियों को रास्ते पर लाने के लिए कई उपाय हैं. जैसे जब कभी आपको किसी फाइल से कोई सूचना मांगनी हो तो अपने आरटीआई आवेदन में एक सवाल फाइल निरीक्षण को लेकर भी जोड़ें. आरटीआई एक्ट की धारा 2 (जे)(1) के तहत आप इसकी मांग कर सकते हैं. आप अपने आवेदन में यह लाइन जोड़ें, महोदय, मैं सूचना का अधिकार क़ानून 2005 की धारा 2 (जे) (1) के तहत अमुक फाइल..... का निरीक्षण करना चाहता हूं. इस संबंध में आप मुझे एक तय समय, जगह और तिथि के बारे में सूचित करें, ताकि मैं आकर उक्त फाइल का निरीक्षण कर सकूं. साथ ही इस बात की भी व्यवस्था करें कि मुझे उक्त फाइल का जो भी हिस्सा चाहिए, उसकी फोटोकॉपी उपलब्ध कराई जा सके. इसके लिए नियत शुल्क का भुगतान मैं कर दूंगा. इसके अलावा अगर लोक सूचना अधिकारी तीस दिनों के भीतर सूचना नहीं देता तो बाद में वह सूचना मुफ्त देनी पड़ती है. आप राज्य सूचना आयोग में द्वितीय अपील/शिक़ायत भी कर सकते हैं या फिर से एक आवेदन फाइल निरीक्षण के लिए भी दे सकते हैं.

पंजीयन संख्या नहीं मिली

मेरे भतीजे इंद्रजीत कुमार के दसवीं कक्षा के अंक पत्र पर पंजीयन संख्या का उल्लेख नहीं है. इस संबंध में मैंने बिहार विद्यालय परीक्षा समिति को आरटीआई के तहत एक आवेदन देकर पूछा. काफी मशक्कत के बाद मुझे एक संक्षिप्त और अधूरी सूचना मिली कि जांच का काम चल रहा है. फ़िलहाल यह मामला राज्य सूचना आयोग में है. ऐसी स्थिति में मेरे भतीजे का नामांकन कहीं नहीं हो पाया.

–लालदेव कामत, *मधुबनी.*

जब मामला आयोग में हो तो सिवाय इंतज़ार के क्या किया जा सकता है, लेकिन अगर आपके भतीजे ने पूर्व में अपने पंजीयन संख्या के संबंध में कोई साधारण आवेदन समिति में जमा किया है और उसकी एक प्रति उसके पास है तो एक बार फिर उसी आवेदन के संबंध में आपका भतीजा अपने नाम से एक नया आरटीआई आवेदन परीक्षा समिति के पास भेज कर सिर्फ़ यह पूछे कि उसके आवेदन पर अब तक क्या कार्रवाई हुई है और ऐसे मामलों के निपटारे के लिए समिति ने क्या समय सीमा तय की है. अगर अभी तक कोई कार्रवाई नहीं हुई है तो इसके लिए कौन–कौन से अधिकारी ज़िम्मेदार हैं, उनके नाम और पदनाम बताएं.

कोयला खदानों में कुछ गड़बड़ है

ग़ौरतलब है कि एसईसीएल कमांड एरिया में अब तक 51 कोयला ब्लॉक कोयला मंत्रालय द्वारा आवंटित किए गए हैं. मैंने सूचना के अधिकार के तहत एसईसीएल, सीएमडी मुख्यालय, बिलासपुर से 51 कोल ब्लॉकों में हो रहे कोयला उत्पादन के बारे में जानकारी मांगी थी. एसईसीएल के अधिकारियों ने जो जवाब दिए हैं, वे चौंकाने वाले हैं. एसईसीएल का कहना है कि सीएमडी के मुख्यालय में उक्त सभी 51 कोल ब्लॉकों से संबंधित कोयला उत्पादन की जानकारी उपलब्ध नहीं है. इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि केंद्रीय कोयला मंत्रालय द्वारा एसईसीएल कमांड एरिया में आवंटित 51 कोल ब्लॉकों में कोयले का घोटाला हो रहा है.

–एस एल सलूजा, *बिलासपुर.*

घोटाले की बात साबित करने के लिए इस मामले में आरटीआई के ज़रिए और तहक़ीक़ात की जा सकती है. मंत्रालय से उक्त ब्लॉकों में कोयला उत्पादन की मात्रा, आपूर्ति एवं ग्राहक इत्यादि के संबंध में सवाल पूछे जा सकते हैं.

विज्ञापन का भुगतान कैसे होगा?

मैं एक स्थानीय समाचारपत्र में बतौर संवाददाता काम कर रहा हूं. हमारे समाचारपत्र में छपे विज्ञापनों का बकाया कई नगर पंचायतों एवं नगरपालिकाओं पर है, जो लंबे समय से नहीं मिला है. क्या आरटीआई के तहत उक्त बकाए का भुगतान हो सकता है.

–शिबली रामपुरी, *सहारनपुर.*

विज्ञापन के संबंध में आपके समाचार पत्र और नगरपालिकाओं एवं पंचायतों के बीच काग़ज़ी अनुबंध यदि हो तो आप भुगतान के लिए पंचायत और नगरपालिकाओं के अधिकारियों को आवेदन दे सकते हैं. आवेदन देने पर भी यदि भुगतान नहीं होता है तो उसी आवेदन की एक कॉपी के साथ आप एक आरटीआई आवेदन उक्त जगहों पर भेज सकते हैं. अपने आरटीआई आवेदन में आप उक्त संस्थाओं द्वारा विज्ञापन भुगतान के संबंध में निर्धारित नियम–क़ानून के बारे में सवाल पूछ सकते हैं. साथ ही भुगतान न करने के लिए ज़िम्मेदार अधिकारी के नाम और पदनाम के बारे में जानकारी मांग सकते हैं. भुगतान के लिए पूर्व में दिए गए साधारण आवेदन पर अब तक की गई कार्रवाई के बारे में भी सवाल पूछ सकते हैं.

चौथी दुनिया ब्यूरो
feedback@chauthiduniya.com

यदि आपने सूचना क़ानून का इस्तेमाल किया है और अगर कोई सूचना आपके पास है, जिसे आप हमारे साथ बांटना चाहते हैं तो हमें वह सूचना निम्न पते पर भेजें. हम उसे प्रकाशित करेंगे. इसके अलावा सूचना का अधिकार क़ानून से संबंधित किसी भी सुझाव या परामर्श के लिए आप हमें ईमेल कर सकते हैं या हमें पत्र लिख सकते हैं. हमारा पता है :

चौथी दुनिया
एफ–2, सेक्टर–11, नोएडा
(गौतमबुद्ध नगर) उत्तर प्रदेश, पिन –201301
ई–मेल : rti@chauthiduniya.com

ज़रा हट के

नए ज़माने का शाहजहां

लोग अपनी बीवी और माशूक़ा को ख़ुश करने के लिए क्या कुछ नहीं करते. इसका जीता–जागता उदाहरण है आगरा का ताजमहल. बादशाह शाहजहां ने अपनी बेगम मुमताज की याद में ताजमहल बना दिया, ताकि उनके प्रेम को दुनिया याद रखे. यह तो हुई इतिहास की बातें, लेकिन अब हम आपको उस मॉडर्न शाहजहां के बारे में बताने जा रहे हैं, जिसने अपनी बीवी को दोबारा पाने के लिए एक महल बनवाया है.

यह वाकया है चीन का. 75 साल के एक बुज़ुर्ग ने अपनी बीवी को पाने के लिए महल बनवाया है, ताकि उनकी पत्नी वापस आ जाए. ग़ौरतलब है कि दस साल पहले उनकी पत्नी उनसे अलग हो गई थी. द शंघाई डेली के मुताबिक़, दस साल से अकेले रह रहे इस शख़्स लुओ रुंकी ने दिसंबर 2009 में अपने सपनों के महल को बनाने की शुरुआत की थी. इस महल को बनाने के लिए लुओ को ख़ासी मेहनत करनी पड़ी. लुओ रोज़ाना सुबह पांच बजे उठते थे. नाश्ता करने के बाद वह महल बनाने के काम में जुट जाते थे. उन्होंने कहा कि यह महल वह अपनी पत्नी को उसकी 70वीं सालगिरह पर देंगे. वाकई उनका जोश और जज़्बा काबिले तारीफ़ है. इस महल की जितनी तारीफ़ की जाए, उतनी कम है, क्योंकि बक़ौल लुओ इस महल को उन्होंने यूरोपीय स्टाइल में तैयार किया है. इस महल में अंगीठियां, शराब रखने वाली जगह और अन्य सभी सुविधाएं मौजूद हैं.

छोटे कपड़े–बड़े एक्सीडेंट

गर्मी में होने वाली कार दुर्घटनाओं में ज़्यादातर मौत पुरुषों की होती है. इसका खुलासा लंदन में हुए एक सर्वे में किया गया है. गर्मी में ज़्यादातर लड़कियां मिनी स्कर्ट और टॉप पहनती हैं, जिसके चलते कार ड्राइव करने वाले पुरुषों की नज़र बरबस ही उनकी तरफ़ चली जाती है और वे दुर्घटनाग्रस्त हो जाते हैं. कार ड्राइव करने वाले 29 फ़ीसदी पुरुषों ने इस बात को स्वीकारा कि गर्मी में लड़कियां छोटे कपड़े पहनती हैं, जिसके चलते कार ड्राइव करते वक़्त उन्हें काफी दिक्कत होती है. ड्राइविंग करते समय जब मिनी स्कर्ट और टॉप में कोई लड़की उनके सामने से गुज़रती है तो उनकी नज़र सड़क के बजाय लड़की की तरफ़ चली जाती है. यही वजह है कि वे दुर्घटनाग्रस्त हो जाते हैं. जबकि महज़ तीन फ़ीसदी महिलाओं ने इस बात को स्वीकारा है कि वे पुरुषों की पोशाक के चलते दुर्घटनाग्रस्त हुईं. मतलब यह कि पुरुषों को छोटे कपड़ों में देखकर उनका भी ध्यान बंट जाता है. उनकी भी नज़र सड़क के बजाय मर्दों की तरफ़ चली जाती है, जिससे वे दुर्घटना की शिकार हो जाती हैं. सर्वे में 1,300 लोगों ने भाग लिया. पिछले पांच सालों के दौरान 25 फ़ीसदी पुरुष कार चालक गर्मियों में दुर्घटनाग्रस्त हो गए या ऐसा होने से बाल–बाल बचे. इसकी तुलना में महज़ 17 फ़ीसदी महिलाओं ने अपनी प्रतिक्रिया दी. शोध के मुताबिक़, गाड़ी ड्राइव करते वक़्त पुरुषों की नज़रें आसानी से लड़कियों की तरफ़ चली जाती हैं. मनोवैज्ञानिकों के मुताबिक़, होर्डिंग्स और ख़ूबसूरत लड़की को देखते ही कार चालकों का ध्यान बंट जाता है और वे सामने देखने के बजाय लड़कियों की तरफ़ देखने लगते हैं, जिससे दुर्घटना के शिकार हो जाते हैं. हालांकि इस स्थिति के लिए टेस्टोस्टेरोन भी कम ज़िम्मेदार नहीं है. यह एक प्रकार का सेक्स हार्मोन है.

चौथी दुनिया ब्यूरो
feedback@chauthiduniya.com

राशिफल

दिल्ली, 16 अगस्त–22 अगस्त 2010

मेष (21 मार्च से 20 अप्रैल)
लव पार्टनर की ओर से शांति एवं खुशियां मिलेंगी. उसके साथ कहीं बाहर जाने का कार्यक्रम बनेगा. किसी व्यक्ति के साथ कोई यात्रा दिलचस्प रहेगी. घर में किसी परेशानी की वजह से पैसा ख़र्च होगा. स्वास्थ्य को लेकर ज़्यादा सावधान रहने की ज़रूरत है.

वृष (21 अप्रैल से 20 मई)
दिल के मामले में कोई महिला आपके लिए फ़ायदेमंद रहेगी. अट्रैक्टिव पर्सनैलिटी के साथ ही उसकी कम्युनिकेशन स्किल्स भी अच्छी होंगी. अगर प्रोफेशनल वर्क पर फोकस करके चलेंगे तो अच्छा रिज़ल्ट मिलेगा. सेहत को लेकर सावधान रहें.

मिथुन (21 मई से 20 जून)
आगे बढ़ने के नए अवसर मिलेंगे. दो–तीन जगहों से व्यवसायिक फ़ायदे मिलेंगे. दिल के मामले में शांति मिलेगी. जीवन में सकारात्मक बदलाव आएंगे. वित्तीय फ़ायदे होंगे और आप रचनात्मक कार्यों में संलग्न रहेंगे. व्यवसायिक मामलों में आ रही दिक़्क़तें दूर हो जाएंगी.

कर्क (21 जून से 20 जुलाई)
कोई नई शुरुआत आपको ख़ुशियां और प्यार देगी. व्यवसायिक तौर पर आप रिलैक्स रहेंगे. वित्तीय फ़ायदे धीरे–धीरे, लेकिन अच्छे होंगे. बहुत ज़्यादा यात्रा करने से सेहत बिगड़ सकती है. दूसरों की चिंता में अपना सुख–चैन गंवा बैठेंगे.

सिंह (21 जुलाई से 20 अगस्त)
व्यवसायिक तौर पर यह हफ्ता आपके लिए बेहद अच्छा रहेगा और आपको कई तरह से सफलता दिलाएगा. धार्मिक यात्रा का कार्यक्रम बनेगा. काम पूरा न होने का मलाल रहेगा. वित्तीय मोर्चे पर कई ऐसी चीजें होंगी, जो आपको तनाव में डाल देंगी.

कन्या (21 अगस्त से 20 सितंबर)
काम में अतिरिक्त मेहनत आपको ज़्यादा फ़ायदा कराएगी. बच्चों के करियर को लेकर चिंता होगी. भावनात्मक रिश्तों में छोटी सी भूल से दरार पड़ सकती है. समाज में आपके लिए प्रतिष्ठा के नए द्वार खुल सकते हैं. स्वास्थ्य पर ध्यान दें, लापरवाही न बरतें.

तुला (21 सितंबर से 20 अक्टूबर)
इस सप्ताह आप कुछ ऐसी रणनीति अपनाएंगे, जिससे आपके विरोधियों और शत्रुओं का सिर नीचा हो सकता है. आर्थिक और व्यापारिक मामलों में सुधार के प्रयास सफल होंगे. राजनीतिक हस्तियों से भी कुछ फ़ायदा मिलने की उम्मीद रहेगी.

वृश्चिक (21 अक्टूबर से 20 नवंबर)
आपकी आर्थिक स्थिति में कुछ बदलाव आएंगे. निवेश से फ़ायदा होगा. बेकार के कामों में अपनी पूरी ताक़त लगा देंगे. राजकीय कार्यों में बेहतर सफलता मिलेगी. आपकी राह की उलझनें दूर होंगी. पारिवारिक ज़रूरतों को पूरा करेंगे. अटके काम पूरे हो जाएंगे.

धनु (21 नवंबर से 20 दिसंबर)
अपनी योग्यता से आपको उम्मीदों से अधिक वित्तीय फ़ायदा होगा. वित्तीय निर्णय तनाव से भरे रहेंगे और इसलिए इस हफ्ते आप कोई बड़ा निर्णय लेने से परहेज करें. स्वास्थ्य को लेकर कई तरह की दिक़्क़तें आएंगी. किसी नौजवान की मदद से यात्रा सकारात्मक रहेगी.

मकर (21 दिसंबर से 20 जनवरी)
मांगलिक कार्यों के लिए किया जा रहा प्रयास सफल साबित होगा. युवाओं को उनके करियर में बेहतर अवसर मिलेंगे. प्रियजन की मदद करके ख़ुश होंगे. आपको लाभ कमाने के लिए अथक परिश्रम करना पड़ेगा. मेहमानों के कारण निर्धारित कार्यक्रम बदलने पड़ेंगे.

कुंभ (21 जनवरी से 20 फरवरी)
कोई नौजवान आपके लिए नुक़सानदेह हो सकता है. सेहत को लेकर सजग रहें, वरना पेट से जुड़ी कोई दिक़्क़त हो सकती है. सपनों को साकार करने का समय है. विरोधियों को अपनी बात आसानी से समझा सकेंगे. नए अनुबंध हो सकते हैं. संपर्क क्षेत्र बढ़ेगा.

मीन (21 फरवरी से 20 मार्च)
किसी बुज़ुर्ग व्यक्ति का स्वास्थ्य आपके लिए चिंता का कारण बनेगा. विरोधियों को मात देने में कामयाब रहेंगे. नए संपर्क भाग्योदय में सहायक हो सकते हैं. जानकारी के अभाव में कार्यस्थल पर परेशानी होगी. जायदाद संबंधी मामले सुलझने से राहत मिलेगी.

पंडित सुदर्शन
feedback@chauthiduniya.com

जनता की इस निराशा की जायज़ वजहें हैं. नेपाल में लोकतंत्र की स्थापना और राजशाही के ख़ात्मे के लिए जब माओवादियों ने अपनी आवाज़ बुलंद की थी तो उन्हें जनता का भरपूर समर्थन मिला.

नेपाल : राजशाही की आहट सुनाई दे रही है

पूर्व राजा ज्ञानेंद्र

प्रधानमंत्री माधव कुमार नेपाल को इस्तीफ़ा दिए एक महीने से ज़्यादा वक़्त गुज़र चुका है, लेकिन नेपाल का भविष्य अभी भी राजनीतिक अनिश्चितता के घेरे में है. संविधान सभा की समय सीमा को एक साल बढ़ा दिया गया है, लेकिन संविधान बनाने की बात तो दूर, मुल्क की राजनीतिक पार्टियां सरकार बनाने के नाम पर भी एकमत नहीं हो पा रही हैं. सब अपनी-अपनी डफली, अपना-अपना राग अलापने में व्यस्त हैं. भूख और ग़रीबी से बेहाल जनता कराह रही है. राजनीतिक पैंतरेबाज़ी में व्यस्त नेताओं को देखकर ऐसा लगता है, जैसे आम लोगों की सुध लेने वाला कोई है ही नहीं. चारों ओर फैली निराशा के बीच जनता को राजशाही के उन दिनों की याद आ रही है, जब नेपाल को एक स्थिर और शांत राष्ट्र के रूप में गिना जाता था. तमाम तरह के विवादों में घिरे राजा के शासन को समाप्त हुए अभी बमुश्किल दो साल ही हुए हैं, लेकिन जनता को यह लगने लगा है कि मौजूदा हालात में राजशाही ही उसके कष्टों का निदान कर सकती है.

पुष्प कमल दहल (प्रचंड)

माधव कुमार नेपाल

जनता की इस निराशा की जायज़ वजहें हैं. नेपाल में लोकतंत्र की स्थापना और राजशाही के ख़ात्मे के लिए जब माओवादियों ने अपनी आवाज़ बुलंद की थी तो उन्हें जनता का भरपूर समर्थन मिला. माओवादियों के साथ मिलकर अन्य राजनीतिक दलों ने भी राजशाही के ख़िलाफ़ जनता को लामबंद किया और उन्हें इन कोशिशों में सफलता भी मिली. 28 मई, 2008 को नेपाल एक लोकतांत्रिक गणतंत्र घोषित कर दिया गया. माओवादियों की मांग के अनुरूप नए संविधान के निर्माण के लिए संविधान सभा का गठन किया गया. संविधान सभा के गठन के लिए हुए चुनाव में माओवादियों को चालीस प्रतिशत से ज़्यादा सीटों पर जीत हासिल हुई. पार्टी के अध्यक्ष पुष्प कमल दहल प्रचंड देश के नए प्रधानमंत्री बने तो एकबारगी ऐसा लगा कि जैसे नेपाल शांति और प्रगति के नए रास्ते पर आगे बढ़ने के लिए प्रतिबद्ध है. लोगों की उम्मीदें परवान चढ़ीं. उन्हें लगा कि देश का नया राजनीतिक नेतृत्व उन्हें दशकों की ग़रीबी, बेरोज़गारी और ज़िल्लत भरी ज़िंदगी से छुटकारा दिलाने में कामयाब होगा, लेकिन लोकतंत्र की स्थापना की मांग करके जनता का विश्वास जीतने में कामयाब रहे माओवादी लोकतांत्रिक व्यवस्था के साथ तालमेल बैठाने में सफल नहीं हुए. सत्ता में आने के बाद भी पार्टी का स्वरूप और चरित्र विरोधी दल का ही बना रहा. सत्ता तंत्र को अपनी मनमर्ज़ी से चलाने की जिद का परिणाम यह हुआ कि बाक़ी सारी पार्टियां उनके ख़िलाफ़ लामबंद हो गईं और नौ महीने के भीतर ही प्रचंड को प्रधानमंत्री पद से इस्तीफ़ा देना पड़ा. नेपाल एक बार फिर राजनीतिक अस्थिरता के भंवर में उलझने को मजबूर हो गया. राजनीतिक जोड़तोड़ के बाद नेपाली कम्युनिस्ट पार्टी (यूनिफाइड-मार्क्सिस्ट-लेनिनिस्ट) के माधव कुमार नेपाल के नेतृत्व में नई सरकार ने सत्ता संभाली, लेकिन 22-23 पार्टियों का यह गठबंधन आपसी खींचतान में ही उलझ कर रह गया. संविधान निर्माण की बात तो दूर है, देश में क़ानून-व्यवस्था की हालत यह हो गई कि शासन शब्द ही बेमानी होकर रह गया. सत्ता से बेदख़ल किए जाने के बाद माओवादी देश के अधिकांश हिस्सों में अपनी समानांतर सरकार चलाने लगे. बंद, हड़ताल, चक्काजाम, हिंसा और आगजनी रोज़ाना की बात बन गई. माओवादी माधव कुमार नेपाल की सरकार को कभी स्वीकार नहीं कर पाए, क्योंकि उन्हें लगता था कि इस गठबंधन का एकमात्र उद्देश्य उन्हें सत्ता से बाहर रखना है. उन्होंने सरकार से लेकर संसद तक को पंगु बनाने में कोई कसर नहीं छोड़ी. केवल माओवादी ही नहीं, शासन की राह को मुश्किल बनाने में गठबंधन के साझेदारों ने भी अपनी भूमिका बख़ूबी निभाई. सरकार में शामिल रहकर भी वह सरकारी फ़ैसलों की खुलेआम आलोचना करते रहे. इस बीच नए संविधान के निर्माण की समय सीमा भी पास आने लगी, लेकिन माओवादी अपनी मांगों पर अड़े रहे. उन्हें पता था कि संविधान निर्माण का काम उनके समर्थन के बिना पूरा नहीं हो सकता और हो भी गया तो वह इसे मानेंगे नहीं. हारकर माधव कुमार नेपाल को भी अपने पद से इस्तीफ़ा देना पड़ा. आज हालत यह है कि तमाम राजनीतिक दल एक-दूसरे को अविश्वास की नज़रों से देख रहे हैं. नए प्रधानमंत्री के चुनाव के लिए तीन बैठकों के बाद भी कोई नतीजा नहीं निकल सका. सरकार निर्माण की प्रक्रिया में सबसे बड़ा बाधक माओवादियों का अक्खड़ रवैया है, जो पीपुल्स लिबरेशन आर्मी (पीएलए) को राष्ट्रीय सेना में समाहित करने पर अड़े हैं. माओवादी चाहें तो छोटी-छोटी मधेशी पार्टियों के साथ मिलकर सरकार बना सकते हैं, लेकिन बाक़ी दल ऐसा होने नहीं देना चाहते.

लोकतांत्रिक मूल्यों और संस्थाओं के प्रति माओवादियों की प्रतिबद्धता भी संदेह के घेरे में है. प्रचंड दोबारा प्रधानमंत्री बनना चाहते हैं, लेकिन ख़ुद उनकी पार्टी ही इस मुद्दे पर दो गुटों में बंट चुकी है. एक गुट प्रचंड के साथ है तो दूसरा गुट बाबूराम भट्टराई का समर्थक है. कमोबेश यही हाल हर राजनीतिक पार्टी का है. गिरिजा प्रसाद कोईराला की मृत्यु के बाद नेपाली कांग्रेस नेतृत्व के संकट से गुज़र रही है. पार्टी के दो वरिष्ठ नेताओं शेरबहादुर देउबा और सुशील कोईराला की आपसी लड़ाई जगज़ाहिर है. यूएमएल के अध्यक्ष झलनाथ खनाल माओवादियों को साथ लेकर चलने के पक्ष में हैं तो के पी ओली और माधव कुमार नेपाल नेपाली कांग्रेस के ज़्यादा क़रीब हैं. लब्बोलुवाब यह है कि सभी राजनीतिक पार्टियां राष्ट्र और आम जनता के प्रति अपनी ज़िम्मेदारियों को भूलकर आपसी मतभेदों में ही उलझ कर रह गई हैं. हालात इस कदर ख़राब हैं कि यदि जोड़-तोड़ के बाद कोई सरकार बन भी जाती है तो उससे कोई बड़ी उम्मीद रखना निरर्थक है. पिछली दो सरकारों का प्रदर्शन देखकर तो कम से कम यही लगता है. तमाम राजनीतिक पार्टियां अब तक संविधान के प्रारूप को लेकर भी एकमत नहीं हो पाई हैं. संविधान सभा की कुल 599 सीटों में 238 पर यूसीपीएन-माओवादी का क़ब्ज़ा है, जबकि 119 सीटें नेपाली कांग्रेस के खाते में हैं. संविधान सभा की तीसरी सबसे बड़ी पार्टी सीपीएन-यूएमएल है, जिसके पास 109 सीटें हैं. जब तक ये तीनों दल किसी एक नाम पर सहमत नहीं होते, तब तक सर्वसम्मत सरकार का गठन संभव नहीं है. वैसे देश का अंतरिम संविधान भी नए प्रधानमंत्री के चुनाव में बाधक बन रहा है. संविधान के मुताबिक़, प्रधानमंत्री पद के दावेदार को संविधान सभा के 599 सदस्यों में से 300 सदस्यों का समर्थन हासिल होना अनिवार्य है, लेकिन इसके मौजूदा स्वरूप और राजनीतिक दलों के बीच आपसी मतभेदों को देखते हुए ऐसा संभव नहीं दिखता. देश की मौजूदा हालत से संयुक्त राष्ट्र भी चिंतित है. नेपाल में यूएन मिशन (यूएनएमआईएन) की मुखिया करीन लैंडग्रेन इसे पहले ही ज़ाहिर कर चुकी हैं. यूएनएमआईएन को क़रीब चार साल पहले शांति प्रक्रिया और संविधान निर्माण में मदद के लिए नेपाल भेजा गया था. इसकी कार्यावधि इस साल 15 सितंबर को ख़त्म हो रही है, लेकिन संविधान निर्माण का काम अभी भी अधर में लटका है. शांति प्रक्रिया का आलम यह है कि माओवादी पीएलए का सेना में विलय कराने पर अडिग हैं, जबकि बाकी पार्टियां इसे भंग करने के पक्ष में हैं. उनके लिए रोज़गार का कोई और साधन उपलब्ध कराने का काम भी नई सरकार के बनने के बाद ही संभव है.

राजनीतिक अस्थिरता और अशांति के इस दौर में जनता की फ़िक्र करने वाला कोई नहीं है. यही कारण है कि जनता की उम्मीदें एक बार फिर राजशाही पर जा टिकी हैं. आम नागरिक की तरह रह रहे पूर्व राजा ज्ञानेंद्र जहां कहीं भी जाते हैं, जनता की भारी भीड़ उनके स्वागत में खड़ी होती है. अपने राजा को विष्णु का अवतार मानने वाली नेपाली जनता उन्हें अपने तारणहार के रूप में देखने लगी है. राजशाही के दौर में हिंदूवादी राष्ट्र रहे नेपाल में कई ऐसे धार्मिक उत्सवों का आयोजन होता है, जिनमें परंपरागत रूप से राजा को ही मुख्य अतिथि के रूप में आमंत्रित किया जाता रहा है. अभी भी इन आयोजनों में ज्ञानेंद्र शरीक़ होते हैं. हाल के महीनों में कई बार ऐसा देखने को मिला है, जब ज्ञानेंद्र की उपस्थिति से उत्साहित हज़ारों लोग राजशाही के समर्थन में नारे लगाते हुए उसकी वापसी की मांग करते नज़र आए हैं. उनकी मांग है, राजशाही आए, शांति लाए. राजनीतिक दलों के बीच अंदरूनी और आपसी कटुता से निराश जनता को यह लगने लगा है कि अभिभावक के रूप में राजशाही की मौजूदगी में ही उसका भविष्य सुरक्षित रह सकता है. दो साल पहले जब राजशाही को ख़त्म किया गया था, तब वह तमाम तरह के विवादों में घिरी हुई थी. 2005 में ज्ञानेंद्र ने लोकतांत्रिक ढंग से चुनी गई सरकार को बर्ख़ास्त कर जब सारे अधिकार अपने हाथों में ले लिए थे तो इसे उनके तानाशाही रवैये के रूप में प्रचारित किया गया था. राजकुमार पारस को लेकर भी तमाम तरह की अफवाहें उड़ी थीं, लेकिन जनता को अब यह एहसास होने लगा है कि यह सत्तालोलुप राजनीतिक दलों का दुष्प्रचार था. राजनीतिक विश्लेषकों का तो यह भी मानना है कि जनता अंदर ही अंदर एक नए आंदोलन के लिए तैयार हो रही है. यदि देश की राजनीतिक व्यवस्था में जल्द ही सुधार के लक्षण नहीं दिखाई पड़े तो उसका यह गुस्सा सतह पर आ सकता है और फिर नेपाल में राजशाही की वापसी की संभावना से इंकार नहीं किया जा सकता. हालांकि मौजूदा संवैधानिक व्यवस्था में ऐसा संभव नहीं है, लेकिन जनता की भावनाओं का लंबे समय तक अनादर भी नहीं किया जा सकता.

आदित्य पूजन
aditya@chauthiduniya.com

देश में नेतृत्व का संकट

वर्ष 1990 में प्रजातांत्रिक व्यवस्था की शुरुआत के बाद से ही नेपाल लगातार राजनीतिक अस्थिरता के दौर से गुज़र रहा है. कोई भी प्रधानमंत्री अब तक पांच वर्ष का कार्यकाल पूरा नहीं कर पाया है. 2008 में नेपाल को गणतांत्रिक राष्ट्र घोषित किया गया और दो वर्ष के भीतर नए संविधान के निर्माण के उद्देश्य से संविधान सभा का गठन हुआ, लेकिन संविधान का कोई नामोनिशान नहीं है. राजनीतिक दल नए प्रधानमंत्री का चुनाव भी नहीं कर पा रहे हैं. आज नेपाल नेतृत्वविहीनता के दौर से गुज़र रहा है. आम जनता की नज़र में राजनीतिक दल ख़ारिज़ हो चुके हैं. दूसरी ओर राजा की लोकप्रियता में लगातार इज़ाफ़ा हो रहा है. देश के हर गली-चौराहे पर राजशाही की वापसी की चर्चाएं होने लगी हैं. काठमांडू हो या जनकपुर या नेपालगंज या फिर बाराका परवानीपुर, ज्ञानेंद्र जहां कहीं भी जाते हैं, उनके पीछे जनसैलाब उमड़ पड़ता है. लोगों की एक ही मांग है, राजा आएं, शांति लाएं. पूरे देश में फैली अशांति और अव्यवस्था से वह निराश हैं. राजनीतिक दलों की नाकामी देखने के बाद लोगों को यह एहसास होने लगा है कि राज संस्था ने हमेशा ही उनकी भावनाओं को समझा है और उनके हितों की रक्षा की है. वह ये मानने लगे हैं कि राजनीतिक व्यवस्था में अभिभावक के रूप में राजशाही की उपस्थिति से उनका भविष्य सुरक्षित हो सकता है.

-रविशंकर प्रसाद साह
राजनीतिक विश्लेषक, नेपाल.

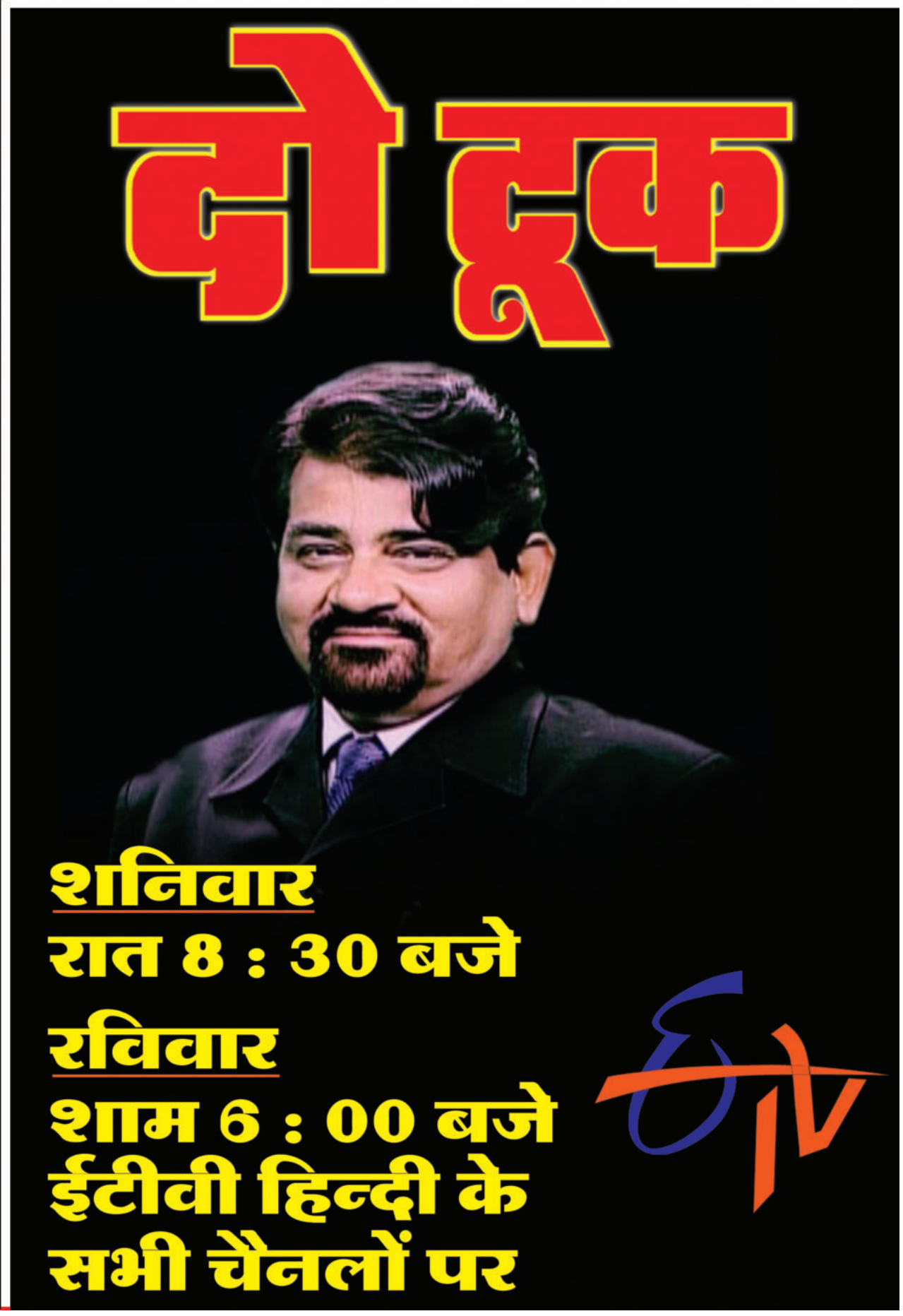

यदि तुम बाबा के निजी जन न होगे तो तुम्हें उनके प्रति आकर्षण भी न होगा और न ही उनके दर्शन प्राप्त होंगे. काका साहेब को ये सारी बातें सुनकर बड़ी प्रसन्नता हुई .

समाज को साईं की ज़रूरत

यूं तो साई बाबा के बारे में कुछ लिखना और कहना किसी के वश की बात नहीं है. अगर यह संभव भी है तो केवल और केवल साई की कृपा से. साई नाथ महाराज को शिरडी के साई बाबा के नाम से आज हर एक व्यक्ति जानता है और वहां दर्शन करने भी जाता है. वर्तमान समय में हमारे समाज में अनेक धर्म-समुदाय के लोग रहते हैं और सभी अपने धर्म को श्रेष्ठ बताते हुए आपस में मतभेद रखते हैं, जिसका परिणाम हमें दंगों और सामाजिक अराजकता के रूप में देखने को मिलता है. साई बाबा ने हमेशा यही कहा कि सबका मालिक एक है और सभी लोगों को एक ही जाति-धर्म का समझने एवं भेदभाव मिटाने से ही हम ख़ुशीपूर्वक जीवन व्यतीत कर सकते हैं. साई बाबा कहते हैं कि जो भी भक्त मुझे सच्चे मन से याद करेगा, मैं उससे मिलने और दु:ख हरने ज़रूर आऊंगा. आप कहीं भी हों, साई अपने भक्तों को देखते रहते हैं. आप भी उन्हें हर जगह महसूस कर सकते हैं, बस शर्त इतनी है कि उन्हें देखने-महसूस करने के लिए एक सच्ची नज़र चाहिए. यह मन की नज़र है, जिसमें होती है श्रद्धा की रोशनी. साई का जीवन आज के आधुनिक युग में हमें कई प्रकार से शिक्षित करता है. आज तक किसी को भी श्री साई बाबा के माता-पिता, उनके जन्म और जन्म स्थान के बारे में कोई जानकारी नहीं है. इस बारे में बहुत छानबीन की गई, लेकिन कुछ पता नहीं चल सका. ख़ुद बाबा एवं अन्य लोगों से पूछने पर भी कोई संतोषजनक उत्तर नहीं मिला. हम इस बिंदु पर आज भी अनभिज्ञ हैं और कल भी रहेंगे. नामदेव और कबीरदास का जन्म भी अन्य लोगों की भांति नहीं हुआ था. वो बाल रूप में प्रकृति की गोद में पाए गए थे. नामदेव भीमरथी नदी के तीर पर गोनाईको और कबीर भागीरथी नदी के तीर पर तमाल को पड़े हुए मिले थे और ऐसा ही साई बाबा के संबंध में भी सुनने को मिलता है. वह शिरडी में नीम के वृक्ष तले सोलह वर्ष की तरुणावस्था में स्वयं भक्तों के कल्याणार्थ प्रकट हुए थे. साई बाबा उस समय भी पूर्ण ब्रह्मज्ञानी प्रतीत होते थे.

साई बाबा के बारे में एक बहुत विचित्र बात सुनने को मिलती है कि उन्होंने तरुणावस्था में कभी अपने केश नहीं कटवाए थे. वह हमेशा किसी पहलवान की तरह रहते थे. साई बाबा शिरडी से तीन किलोमीटर दूर जब राहाता जाते थे तो वहां से गेंदा, जूही एवं जई के पौधे ले आते थे और उन पौधों को ज़मीन स्वच्छ करके वहां रोप दिया करते थे. इतना ही नहीं, वह पौधों को स्वयं अपने हाथों से सींचा करते थे. उनका एक भक्त वामन तात्या था. वह उन्हें नित्य मिट्टी से बने दो घड़े दिया करते थे. उन घड़ों से ही बाबा पौधों को सींचा करते थे. साई बाबा हर रोज़ कुएं से स्वयं पानी खींचते थे. फिर शाम के समय उन घड़ों को नीम के पेड़ के नीचे रख दिया करते थे. वहां एक चमत्कार भी होता था कि जैसे ही वह घड़े रखते थे, कुछ देर बाद घड़े अपने आप फूट जाते थे. पहले उन्होंने सोचा कि घड़े कच्ची मिट्टी के बने होते हैं, इसीलिए फूट जाते हैं. अगले दिन तात्या उन्हें दो नए घड़े दे जाया करता था. यह सिलसिला तीन वर्षों तक चलता रहा. साई बाबा के कठोर श्रम से वहां एक मनोरम फुलवारी बन गई थी. उल्लेखनीय है कि बाबा की समाधि जहां बनी हुई है, वहां आज बड़ी संख्या में भक्त दर्शन करने के लिए आते हैं. साई बाबा जैसे संतों से ही इस कलयुग में मानव जीवन का उद्धार संभव है.

चौथी दुनिया ब्यूरो
feedback@chauthiduniya.com

भार तुम्हारा मुझ पर होगा, वचन न मेरा झूठा होगा.

काका साहेब और साई बाबा

श्री हरि सीताराम, जो काका साहेब दीक्षित के नाम से जाने जाते हैं, का जन्म सन् 1864 में वड़नगर के खंडवा में एक नागर ब्राह्मण परिवार में हुआ था. उनकी प्राथमिक शिक्षा खंडवा एवं हिंगणघाट में हुई. माध्यमिक शिक्षा के बाद उन्होंने पहले विल्सन और फिर एलफिंस्टन कॉलेज में अध्ययन किया. सन् 1883 में उन्होंने स्नातक की डिग्री लेकर क़ानूनी सलाहकार की परीक्षा पास की और फिर सरकारी सॉलीसिटर फर्म-मेसर्स लिटिल एंड कंपनी में कार्य करने लगे. इसके बाद उन्होंने ख़ुद की एक सॉलीसिटर फर्म चालू कर दी.

सन् 1909 के पहले तक काका साहेब साई बाबा की कीर्ति से वाकिफ़ नहीं थे, लेकिन जैसे ही उन्हें पता चला, वह बाबा के परमभक्त बन गए. एक बार लंदन में रेलगाड़ी पर चढ़ते समय उनके पैर में चोटें आई थीं, जिसकी वजह से उन्हें काफी तक़लीफ़ थी. इलाज में हर जगह से थक-हारकर काका साहेब ने अपनी परेशानी पुराने मित्र नाना साहेब चांदोरकर से कही. नाना साहेब ने उनसे कहा कि यदि तुम इस कष्ट से मुक्ति पाना चाहते हो तो मेरे सद्गुरु श्री साई बाबा की शरण में जाओ. उन्होंने बाबा का पूरा पता बताकर कहा कि वैसे साई बाबा अपने भक्तों को सात समंदर पार से भी बुला ही लेते हैं. उन्होंने यह भी स्पष्ट कर दिया कि यदि तुम बाबा के निजी जन न होगे तो तुम्हें उनके प्रति आकर्षण भी न होगा और न ही उनके दर्शन प्राप्त होंगे. काका साहेब को ये सारी बातें सुनकर बड़ी प्रसन्नता हुई और उन्होंने कहा कि वह शिरडी जाकर बाबा से इस कष्ट से निवारण की प्रार्थना करेंगे. कुछ दिनों बाद ही काका साहेब दीक्षित किसी काम को लेकर अहमदनगर गए और काम पूरा होते ही शिरडी जाने की तैयारी में लग गए. वहीं दूसरी ओर साई बाबा अलग ही ढंग से उन्हें अपने पास बुलाने का प्रबंध कर रहे थे. शिरडी में बाबा का परमभक्त शामा के पास एक तार आया कि उनकी सास की हालत अधिक ख़राब है और उन्हें देखने के लिए वह शीघ्र ही अहमदनगर आएं.

बाबा से अनुमति प्राप्त कर शामा ने वहां जाकर अपनी सास को देखा, जिनकी स्थिति में अब पर्याप्त सुधार हो चुका था. जाते समय बाबा ने शामा से नाना साहेब पानसे एवं अप्पा साहेब दीक्षित से भेंट करने और उन्हें अपने साथ शिरडी ले जाने के लिए कहा. उन्होंने शामा के आगमन की सूचना काका साहेब दीक्षित एवं मिरीकर को भी दे दी. संध्या समय शामा मिरीकर के घर आए. मिरीकर ने शामा का काका साहेब से परिचय कराया और फिर यह निश्चित हुआ कि काका साहेब उनके साथ रात 10 बजे वाली गाड़ी से कोपरगांव रवाना हो जाएं. इसके बाद एक विचित्र घटना घटी. मिरीकर ने बाबा के एक बड़े चित्र से पर्दा हटाकर काका साहेब को उनके दर्शन कराए तो उन्हें यह देखकर आश्चर्य हुआ कि जिनके दर्शनार्थ मैं शिरडी जाने वाला हूं, वह ही इस चित्र के रूप में मेरे स्वागत हेतु यहां विराजमान हैं. तब अत्यंत द्रवित होकर वह बाबा की वंदना करने लगे. यह चित्र मेघा का था और कांच लगाने के लिए मिरीकर के पास आया था. दूसरा कांच लगवा कर उसे काका साहेब एवं शामा के हाथ वापस शिरडी भेजने का प्रबंध किया गया. 10 बजे से पहले ही स्टेशन पर पहुंच कर उन्होंने द्वितीय श्रेणी का टिकट ले लिया. जैसे ही गाड़ी स्टेशन पर आई तो द्वितीय श्रेणी का डिब्बा खचाखच भरा था. उसमें बैठने के लिए तिल मात्र भी स्थान न था. भाग्यवश गार्ड साहब काका साहेब दीक्षित के परिचित निकले और उन्होंने इन दोनों को प्रथम श्रेणी के डिब्बे में बैठा दिया. इस प्रकार सुविधापूर्वक यात्रा करते हुए वे कोपरगांव स्टेशन पर उतरे. स्टेशन पर ही शिरडी जाने वाले नाना साहेब चांदोरकर को देखकर उनकी ख़ुशी का ठिकाना न रहा.

शिरडी पहुंचने के बाद उन्होंने मस्जिद जाकर बाबा के दर्शन किए. तब बाबा कहने लगे कि मैं बड़ी देर से तुम्हारी ही प्रतीक्षा कर रहा था. शामा को मैंने ही तुम्हें लाने के लिए भेजा था. इसके बाद काका साहेब कई सालों तक बाबा की संगत में रहे. उन्होंने शिरडी में एक वाड़ा बनवाया, जो उनका प्राय: स्थायी घर हो गया.

चौथी दुनिया ब्यूरो
feedback@chauthiduniya.com

कोट्टयक्कल शिवरामन का जन्म वर्ष 1936 में हुआ था. उनके गुरु थे उनके चाचा पद्मश्री वेजहेंकाडा कुंचु नायर, जो केरल के मालाप्पुरम ज़िले के कोट्टयक्कल में रहते थे.

पच्चीस का हंस

अनंत विजय

आज से पच्चीस साल पहले जब अगस्त 1986 में राजेंद्र यादव ने हंस पत्रिका का पुनर्प्रकाशन शुरू किया था, तब किसी को भी उम्मीद नहीं रही होगी कि यह पत्रिका निरंतरता बरक़रार रखते हुए ढाई दशक तक निर्बाध रूप से निकलती रहेगी, शायद संपादक को भी नहीं. उस वक़्त हिंदी में एक स्थिति बनाई या प्रचारित की जा रही थी कि यहां साहित्यिक पत्रिकाएं चल नहीं सकतीं. सारिका बंद हो गई, धर्मयुग बंद हो गया, जिससे यह साबित होता है कि हिंदी में गंभीर साहित्यिक पत्रिका चल ही नहीं सकती. लेकिन तमाम आशंकाओं को धता बताते हुए हंस ने अगस्त में अपने पच्चीस साल पूरे करते हुए यह सिद्ध कर दिया कि हिंदी में गंभीर साहित्य के पाठक हैं और पिछले पच्चीस सालों में इसे शिद्दत से साबित भी कर दिया. मेरे जानते हिंदी में व्यक्तिगत प्रयास से निकलने वाली हंस इकलौती कथा पत्रिका है, जो लगातार पच्चीस सालों से प्रकाशित हो रही है और इसका पूरा श्रेय जाता है इसके संपादक एवं वरिष्ठ लेखक राजेंद्र यादव को. जब इस पत्रिका का प्रकाशन शुरू हुआ था, तब इस बात को लेकर ख़ासी सुगबुगाहट हुई थी कि यह प्रेमचंद की पत्रिका हंस है या दिल्ली के हंसराज कॉलेज की पत्रिका हंस, लेकिन कालांतर में इस पत्रिका ने साबित कर दिया कि वह सचमुच में प्रेमचंद वाला हंस ही है. राजेंद्र यादव स्वयं प्रतिष्ठित साहित्यकार हैं और नई कहानी आंदोलन के अवांगार्द. बहुत पहले यादव जी ने एक आलोचनात्मक पुस्तक लिखी थी, प्रेमचंद की विरासत. बाद में कहानीकार होते हुए भी उन्होंने प्रेमचंद की विरासत को ही अपनाया और हंस का पुनर्प्रकाशन किया. पिछले पच्चीस सालों में हंस ने हिंदी साहित्य को न केवल एक नई दिशा दी, बल्कि उसने दलित और स्त्री विमर्श के साथ-साथ तत्कालीन प्रासंगिक मुद्दों को उठाकर हिंदी साहित्यिक पत्रकारिता का एक नया इतिहास भी लिखा और साहित्यिक पत्रकारिता के कुछ नए मानक भी स्थापित किए. कई तरह की खुली बहस से दूसरी पत्रिका के संपादकों के हाथ-पांव फूल जाते थे, उसे राजेंद्र यादव ने हंस में ज़ोरदार तरीक़े से उठाया. ख़ुद अपने संपादकीय में बिना किसी डर-भय और लाग-लपेट के यादव जी ने अपनी बातें कहकर बहस में सार्थक हस्तक्षेप किया. अपने प्रकाशन के शुरुआती दिनों से ही हंस ने साहित्यिक माहौल को गर्मागर्म बनाए रखा और जो मुर्दनी छाप शास्त्रीय किस्म का माहौल था, उसे सक्रिय करते हुए जुझारू तेवर भी प्रदान किए. हो सकता है कि राजेंद्र यादव के स्टैंड से आप सहमत न हों, लेकिन पच्चीस बरसों

की लंबी अवधि में यादव जी ने अनेक विचारोत्तेजक मुद्दों पर बहस चलाई और साहित्यिक माहौल को सजीव बनाए रखा. यादव जी के एजेंडे में सिर्फ़ साहित्यिक मुद्दे ही नहीं रहे, अनेक सामाजिक मुद्दों को भी हंस ने अपनी परिधि में लेकर सार्थक बहसें चलाईं. आज अगर दलित विमर्श या दलित चेतना, स्त्री विमर्श या स्त्री चेतना हमारे समय की महत्वपूर्ण प्रवृत्तियों के रूप में व्यापक रूप से मान्यता पा चुके हैं तो इसका काफी श्रेय हंस और इसके संपादक राजेंद्र यादव को जाता है.

इसके अलावा हंस ने पच्चीस सालों में तक़रीबन चार पीढ़ियों को साहित्य में दीक्षित करने का काम भी किया. मुझे मेरा साहित्यिक संस्कार ज़रूर परिवार से मिला, लेकिन मुझे यह स्वीकार करने में तनिक भी हिचक नहीं है कि हंस ने उसे परिष्कृत किया. हंस को पढ़ते हुए ही कई मसलों को देखने-समझने की नई दृष्टि भी मिली.

इसके अलावा जो एक बड़ा काम यादव जी ने हंस के माध्यम से किया, वह यह कि कहानीकारों की एक लंबी फ़ौज खड़ी कर दी. यह कहते हुए मुझे कोई संकोच या किसी तरह की कोई हिचक नहीं है कि पिछले ढाई दशक की हिंदी की महत्वपूर्ण कहानियां हंस में ही छपीं. एक बार बातचीत में यादव जी ने इस बात को स्वीकार करते हुए कहा था कि अगर झूठी शालीनता न बरतूं तो कह सकता हूं कि हिंदी में अस्सी प्रतिशत श्रेष्ठ कहानियां हंस में ही प्रकाशित हुई हैं और ऐसे एक दर्जन से ज़्यादा कवि हैं, जिनकी पहली कविता हंस में ही छपी और आज उनमें से कई हिंदी के महत्वपूर्ण रचनाकार हैं. यादव जी की इस बात में कोई अतिशयोक्ति नहीं है. हंस ने अपने प्रकाशन के शुरुआती वर्षों में ही उदय प्रकाश की तिरिछ, शिवमूर्ति की तिरिया चरित्तर, ललित कार्तिकेय की तलछट का कोरस, रमाकांत की कालों हब्शी का संदूक, चंद्र किशोर जायसवाल की हंगवा घाट में पानी रे और आनंद हर्षुल की उस बूढ़े आदमी के कमरे में छाप कर हिंदी कथा साहित्य को एक नया जीवनदान दिया. बाद में भी हंस में ही छपी उदय प्रकाश की चर्चित कहानियां और अंत में प्रार्थना, पीली छतरी वाली लड़की, अरुण प्रकाश की जल प्रांतर, अखिलेश की चिट्ठी, स्वयं प्रकाश की अविनाश मोटू उर्फ़... एवं संजय की कॉमरेड का कोट आदि कहानियों ने भी कथा साहित्य को झकझोर दिया था.

यह लेख तो हंस के पच्चीस साल पूरे होने पर उसके मूल्यांकन के तौर पर लिख रहा हूं, लेकिन इसी महीने राजेंद्र यादव बयासी साल के हो रहे हैं. उम्र के इस पड़ाव पर भी वह जिस मुस्तैदी और लगन के साथ हंस का संपादन करते हैं और पत्रिका को नियत समय पर निकालते हैं, वह किसी के लिए भी रश्क की बात हो सकती है. अगर आप उनके संपर्क में हैं तो वह लगातार आपको कुछ नया करने के लिए उकसाते रहेंगे और तब तक नहीं मानेंगे, जब तक कि वह आपसे कुछ करवा न लें. एक संपादक के तौर पर राजेंद्र यादव बेहद ही लोकतांत्रिक हैं. हंस में पाठकों के जो पत्र छपते हैं, वे इस बात के प्रमाण हैं कि राजेंद्र यादव अपनी आलोचना को भी बेहद प्रमुखता से प्रकाशित करते हैं. आप उनके लेखन और विचार से अपनी असहमति लिखकर या मौखिक भी दर्ज करा सकते हैं. उनसे बातचीत करते वक़्त आपको इस बात का बिल्कुल भी एहसास नहीं होगा कि आप हिंदी के इतने बड़े लेखक या संपादक से बात कर रहे हैं. उनका व्यक्तित्व आतंकित नहीं करता, बल्कि रचनाशीलता के लिए उकसाता है. उनके लेखन में ही नहीं, बल्कि उनके स्वभाव में भी एक खिलंदड़ेपन और छेड़छाड़ की प्रवृत्ति है. यादव जी अपनी बातचीत में ही नहीं, अपने लेखन में भी समकालीन बने रहना चाहते हैं. हाल के दिनों में उनके संपादकीय में ग़ज़ब की पठनीयता आ गई है. यादव जी को संपादकीय में अंग्रेजी के शब्दों के इस्तेमाल पर आलोचना भी झेलनी पड़ती रही है. अशोक वाजपेयी कहते हैं, अपने संपादकीय में वह जिस तरह हर तीसरे वाक्य में बेवजह अंग्रेजी के शब्द ठूंसते हैं, जबकि उनके लिए हिंदी में काफी दिनों से प्रचलित पर्यायवाची सुलभ हैं. यह अंतत: उन्हें बौद्धिक रूप से एक भाषा विपन्न लेखक, बल्कि संपादक सिद्ध करता है. अशोक वाजपेयी एवं नामवर सिंह से यादव जी की नोकझोंक चलती रहती है, लेकिन इन लोगों की इस नोकझोंक से साहित्यिक परिदृश्य सजीव बना रहता है. हमारी कामना है कि यादव जी दीर्घायु हों और हंस का संपादन पचास साल तक करते रहें.

(लेखक आईबीएन-7 से जुड़े हैं)

feedback@chauthiduniya.com

पुस्तक अंश

मुन्नी मोबाइल

गतांक से आगे

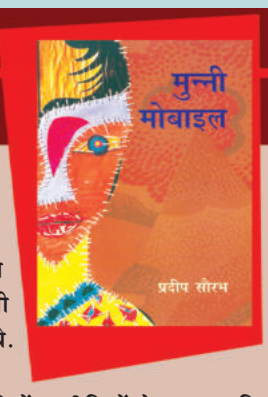

प्रदीप सौरभ

आनंद जानते हैं कि वह मानसी को कदापि दु:ख नहीं देना चाहते थे. ऐसा वह सोच भी नहीं सकते थे पर...बस...उस समय की सामाजिक सीमाओं और उस समाज की बुनियादी संरचना में आनंद भारती अपने रिश्ते को परिभाषित नहीं कर पाए. आनंद भारती मानसी को अक्सर कहते थे, यदि तुम मेरे मौन को नहीं समझती हो तो शब्दों को भी नहीं समझोगी. शब्दों का पथ शांति का पथ है. मानसी और आनंद का रिश्ता कभी टूटा नहीं. वह छूटा ज़रूर...पर कुछ समय के लिए. रिश्तों ने अपने भावार्थ वही रखे...बस शब्दों के पर्याय बदल गए.

आनंद भारती को याद है कि शिवानी को उनकी हर पसंद- नापसंद सिखाने में मानसी कितनी बड़ी भूमिका निभाती थी. वह आनंद भारती के सामने घर पर कभी नहीं आती थी, ताकि आनंद शिवानी को पूरी तरह समझ सकें, अपना सकें. शिवानी भी मानसी को बहुत इज़्ज़त देती, उससे बहुत कुछ सीखती. आनंद भारती को मां से पता चलता था कि शिवानी के साथ उनके टूटते संबंधों को जोड़े रखने में मानसी शिवानी को बेहद समझाया करती थी. फोन पर लंबी-लंबी बातचीत में वह शिवानी को हर बार यह एहसास दिलाती थी कि आनंद भारती अपने स्वभाव में खुरदुरे ज़रूर हैं, पर शिवानी उनके भीतर की ऐसी डोर है, जिससे आनंद अपने परिवार को बांधे रखना चाहते हैं. पर, यहां भी वही हुआ था, जिसे आनंद भारती नहीं होने देना चाहते थे...शिवानी से उनका संबंध टूट गया था...इसी इलाहाबाद में वह शिवानी को ब्याह कर लाए थे...उसके साथ बेहद मधुर रिश्ता निभाया था...आनंद भारती सोचते जा रहे थे कि अचानक सीनेट हॉल की घड़ी की आवाज़ ने उन्हें चौंका दिया. पूरा एक घंटा बीत गया...ट्रेन भी पकड़नी है...यह सोचकर आनंद उठने के लिए मजबूर हो गए. आनंद भारती को इसी विश्वविद्यालय और शहर का जानकर पास खड़े छात्रों के एक समूह ने उनसे पूछा,

सर, आपके समय भी इलाहाबाद ऐसा ही था?

नहीं! गंगा-जमुना शहर के अंदर कभी-कभी बह लेती थीं. अब तो गंगा इस शहर से रूठ ही गई हैं. नदी जब किसी शहर से रूठती है तो उस शहर को उजड़ने में देर नहीं लगती है. कानपुर को ही देखो. कभी इंडिया का मैनचेस्टर उसे बोलते थे. अब फैक्ट्रियां भूत बंगला हो गई हैं. गंगा जो रूठ गई उस शहर से. अब इलाहाबाद की बारी है. नदी किनारे तप और तपस्या करने वाले ग़ायब हो गए हैं. नदी के बीचोबीच नाव में कच्ची शराब बिक रही है. कछार वाले हिस्से में कभी साधु विचरते थे, अब वहां डकैत घूम रहे हैं. ऐसा लगता है कि इलाहाबाद का हर आदमी देशी बम बना रहा है. रोज दीवाली का एहसास बना रहता है. विश्वविद्यालय में भी फिराक गोरखपुरी से लेकर धर्मवीर भारती जैसे दिग्गज थे. अब तो पढ़ाने वाले भी वैसे नहीं रहे.

इलाहाबाद को अलविदा कहने का वक़्त क़रीब था. मित्रों- परिचितों से एक बार फिर से गले मिलकर आनंद स्टेशन आ गए थे. यादों की धुंध अभी उनके साथ थी. स्टेशन पर काफी छात्र उन्हें छोड़ने आए थे. इलाहाबाद से विदाई हमेशा उन्हें कचोटती है. पहली बार वह जब दिल्ली गए थे तो पिता से लड़कर गए थे. ट्रेन भी प्रयागराज एक्सप्रेस थी. तब उनके पास दिल्ली में कोई ठिकाना नहीं था. गुस्से में फ्रीलांसिंग का मन बनाकर चल दिए थे. उनकी यहां तक तैयारी थी कि यदि प्लेटफार्म पर भी सोना पड़ गया तो वह हिचकेंगे नहीं, लेकिन ऐसा नहीं हुआ. ट्रेन में ही उन्हें राजकुमार मिल गए. वह भी इलाहाबाद में उनके साथ पढ़े थे. बिहार में ही सक्रिय एक दूसरे नक्सली संगठन से जुड़े थे. उनके पीछे काफी दिनों तक पुलिस भी पड़ी रही. वह जुगाड़ लगाकर दिल्ली पहुंच गए थे. जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय में उन्हें दाख़िला मिल गया था. इस विश्वविद्यालय को वामपंथियों के दुर्ग के रूप में जाना जाता है. राजकुमार को आनंद भारती ने जब सारी बात बताई तो उन्होंने कहा कि एक हफ्ते के लिए वह विश्वविद्यालय के गेस्ट हाउस में जुगाड़ करा देंगे और जुगाड़ हो भी गया था. विश्वविद्यालय में आनंद भारती के भी कई दोस्त थे. उनकी अपनी पार्टी के. राजकुमार से शुरू हुआ जुगाड़ का सिलसिला एक साल तक चलता रहा.

अगले अंक में जारी...

कथकली के पर्याय आचार्य कोट्टयक्कल शिवरामन

नल चरित की दमयंती हो या कीचक वध की सैरंध्री, कर्ण शपथ की कुंती हो या बाज युद्ध की चित्रलेखा, हर चरित्र को अपने लाजवाब मुखाभिनय द्वारा जीवंत कर देते थे कोट्टयक्कल शिवरामन. मंच पर अपनी शानदार प्रस्तुति के ज़रिए दर्शकों को मंत्रमुग्ध कर देने वाले अंतरराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त कथकली आचार्य कोट्टयक्कल शिवरामन का पिछले दिनों 74 वर्ष की आयु में निधन हो गया. वह केरल के शास्त्रीय नृत्य कथकली के मूर्धन्य ज्ञाता थे. नृत्य विशेष में उनकी प्रवीणता का आलम यह था कि उन्होंने अनगिनत महिला चरित्रों का अभिनय इतनी सहजता से किया कि दर्शक दांतों तले उंगलियां दबाने को मजबूर हो गए.

कथकली नृत्य मूल रूप से पुरुष प्रधान नृत्य है, लेकिन शिवरामन ने इसमें महिला चरित्र प्रदर्शित करने में अहम भूमिका निभाई. उन्होंने सबसे पहले पदम्स जैसे स्लो बेस्ड गीत चुने, जिससे महिला चरित्रों का अभिनय आसानी से किया जा सके. वह अपने इस प्रयोग में सफल रहे. कथकली के विभिन्न पक्षों की बारीक़ी से समझ रखने

कथकली नृत्य मूल रूप से पुरुष प्रधान नृत्य है, लेकिन शिवरामन ने इसमें महिला चरित्र प्रदर्शित करने में अहम भूमिका निभाई. उन्होंने सबसे पहले पदम्स जैसे स्लो बेस्ड गीत चुने, जिससे महिला चरित्रों का अभिनय आसानी से किया जा सके.

वाले शिवरामन ने ललिता, उर्वशी, दमयंती, मोहिनी एवं सैरंध्री आदि प्रमुख महिला चरित्रों को एक नए रूप में प्रस्तुत किया. इन्हीं प्रस्तुतियों ने उन्हें लोकप्रिय बना दिया.

कोट्टयक्कल शिवरामन का जन्म वर्ष 1936 में हुआ था. उनके गुरु थे उनके चाचा पद्मश्री वेजहेंकाडा कुंचु नायर, जो केरल के मालाप्पुरम ज़िले के कोट्टयक्कल में रहते थे. चाचा से कथकली की शिक्षा ग्रहण करने के बाद शिवरामन 1960 में पहली बार मंच पर उतरे. इसके बाद उन्होंने पूर्वी भारत और केरल के कई कलाकारों के साथ अभिनय किया. वह आधुनिक युग के उन प्रख्यात कथकली कलाकारों में से एक थे, जिन्होंने किसी संस्थान विशेष से यह कला नहीं सीखी, बावजूद इसके उन्होंने पूरी दुनिया में अपना और देश का नाम रोशन किया. शिवरामन ने अपनी नृत्य कला के माध्यम से देश-दुनिया को सौंदर्यवादी प्रेम का संदेश दिया. एक समय यह भी आया कि वह इतने मशहूर हो गए कि उनके पैतृक गांव का नाम करलमन्ना के स्थान पर कोट्टयक्कल हो गया. करलमन्ना उस गांव का मूल नाम था.

आचार्य शिवरामन ने पुरुष चरित्रों को भी बराबर तवज्जो दी. उनकी बढ़ती उम्र कभी उन पर हावी नहीं हो सकी. यह उनकी लगातार सक्रियता और कला के प्रति उनके समर्पण का नतीजा था. उन्होंने महिला चरित्रों का अभिनय बराबर जारी रखा. शिवरामन को किताबें पढ़ने का बहुत शौक़ था. मलयालम साहित्य में उनकी ख़ासी दिलचस्पी थी. बीते पांच दशकों के दौरान उन्होंने सैकड़ों प्रस्तुतियां दीं. वह पीएसवी नाट्य संघम से वर्षों तक जुड़े रहे. कलामंडलम कृष्ण नायर एवं कलामंडलम गोपी जैसे नायकों के साथ हुई उनकी प्रस्तुतियां तो कथकली नृत्य के इतिहास में दर्ज हो गईं. वर्ष 2007 में उन्हें राष्ट्रीय पुरस्कार से सम्मानित किया गया. इससे पहले वह कलामंडलम कला रत्न एवं संगीत नाटक अकादमी समेत अनेक पुरस्कारों से सम्मानित किए जा चुके थे. वर्ष 2009 में केरल सरकार ने उन्हें राज्य के सर्वोच्च सम्मान से नवाजा. इसके लिए उनके नाम का चयन प्रसिद्ध कवि ओ एन वी कुरुप के नेतृत्व वाली ज्यूरी ने किया था.

डॉ. वेणु गोपाल कृष्ण
feedback@chauthiduniya.com

बाज़ार में नई आई मोबाइल कंपनी विवा मोबाइल हैंडसेट की नई रेंज लांच कर रही है. वैल्यू, इनोवेशन, वेलोसिटी और असेट को मिलाकर कंपनी का नाम विवा रखा गया है.

दीवानों की सुपरबाइक

फोटो–*प्रभात पाण्डेय*

अगर आप सुपर बाइक के दीवाने हैं तो आपके लिए अच्छी ख़बर है. महंगी और उच्च क्षमता वाली बाइक्स (सुपरबाइक) में ग्राहकों की दिलचस्पी से उत्साहित होकर होंडा मोटरसाइकिल एंड स्कूटर्स इंडिया ने स्पोर्ट्स बाइक वीएफआर–1200 एफ लांच की है. सुपर बाइक वीएफआर–1200 एफ को इंटरनेशनल डिजाइन में लंबी दूरी पर चलने लायक बनाया गया है. इसे हाइवे, घाटी, टेढ़े–मेढ़े रास्तों पर आसानी से दौड़ाया जा सकता है. यह स्पोर्ट्स बाइक रेडिकल और टूरिंग दोनों का भरपूर आनंद देगी. अपनी उच्च तकनीक, क्षमता और परफार्मेंस से यह फन बाइकिंग की दुनिया में मील का पत्थर साबित होगी. इसका वी–4 1237 सीसी इंजन बाइक का पावर बढ़ाता है. इसके ईंधन टैंक की क्षमता 18.5 लीटर है. वीएफआर–1200 एफ में पहली बार ड्यूल क्लच ट्रांसमिशन तकनीक का इस्तेमाल किया गया है. इस तकनीक से लैस होंडा की वीएफआर–800 सीबीआर 1100 एक्स एक्स सुपर ब्लैकबर्ड बाइक पहले ही बाज़ार में काफ़ी प्रचलित हो चुकी है. अब वीएफआर–1200 एफ भी इसी तर्ज़ पर लांच की गई है. इस तकनीक से बने इंजन की ख़ासियत यह है कि सामान्य और अच्छी परिस्थितियों में चलते हुए यह पीछे के सिलेंडरों को बंद कर सकता है, जिससे पेट्रोल की ख़पत कम हो जाती है. इस बाइक में तकनीक और गुणवत्ता का बेहतरीन मिश्रण है. इसका ऊपरी भाग एवं चेसिस बॉडी एक शानदार एहसास कराते हैं. वीएफआर–1200 एफ की डायनेमिक डिजाइन, इसका शेड, बैक लाइट, इंडीकेटर आगे की लाइटों के साथ सामंजस्य बैठाते हुए अलग लुक देते हैं. इस बाइक का पिछला हिस्सा बेहद छोटा और उठा हुआ है, जो गाड़ी को स्पीड देने में मदद करता है. यह बाइक दो रंगों कैंडी प्रीमियम रेड और सील सिल्वर मेटालिक में उपलब्ध है. यह स्पोर्ट्स बाइक अगस्त के तीसरे हफ्ते से भारतीय सड़कों पर दौड़ती नज़र आएगी.

फोन है कुछ ख़ास

आज के दौर के ग्राहकों की बदलती मांग के मुताबिक़ मोबाइल कंपनियां ग्राहकों को कम दाम पर बेहतरीन उत्पाद उपलब्ध कराने की पुरज़ोर कोशिश कर रही हैं. इसी तरह बाज़ार में नई आई मोबाइल कंपनी विवा मोबाइल हैंडसेट की नई रेंज लांच कर रही है. वैल्यू, इनोवेशन, वेलोसिटी और असेट को मिलाकर कंपनी का नाम विवा रखा गया है. हाई एंड फोन के फीचर्स वाले विवा मोबाइल फोन की इस रेंज में स्टाइल के साथ कई ख़ास फीचर्स भी कम क़ीमत पर उपलब्ध हैं. विवा ने फिलहाल वी–4, क्यूएम, क्यू–6, क्यू–8 के साथ ग्यारह मोबाइल फोन मॉडल लांच किए हैं और इसी वर्ष अक्टूबर तक वह बारह अन्य मॉडल बाज़ार में उतारेगी. अभी लांच हुए मॉडलों में पर्सनल और सिम लॉक फीचर ख़ास हैं. इसके अलावा इंफारमेशन लॉक सिस्टम, जिससे एसएमएस और फोन बुक लॉक किया जा सकता है, विशेष है. एमटीके जैसे लेटेस्ट प्रोसेसर 6253 के साथ इस रेंज के हैंडसेटों पर वाई फाई, वीडियो चैट की सुविधा उपलब्ध है. दोस्तों और अपने जानने वालों से हमेशा कनेक्टेड रहने के लिए आप इसमें कई एप्लिकेशंस जैसे एमएसएन याहू, ट्विटर, फेसबुक, ई–बड़ी, ऑरकुट, जावा, ओपेरा मिनी आसानी से एक्सेस कर सकते हैं. विवा के सभी मॉडलों में लगी सर्टिफाइड हेवी ड्यूटी बैट्री बढ़िया बैकअप देती है. बड़ा स्क्रीन साइज, मिनी क्वर्टी कीपैड, वायरलेस एफएम आदि हैंडलिंग फीचर्स इस फोन को इस्तेमाल करना आसान बना देते हैं. इस रेंज के कुछ फोन बिजनेस फोन हैं तो कुछ रेग्युलर फोन और कुछ म्यूजिक एडिशन फोन हैं. सभी फोन एक्सपेंडेबल मेमोरी के साथ कई रंगों और स्टाइलों में उपलब्ध हैं.

घड़ियों का नया स्टाइल

स्टाइलिश घड़ियां बनाने वाली जापानी कंपनी कैशियो ने भारतीय बाज़ार में कलरफुल जी–शॉक रेंज की घड़ियां लांच की हैं. जेनेरेशन नेक्सट के लिए ख़ासतौर से बनाई गई उक्त घड़ियां ख़ुद में ख़ास हैं. 1983 में आई पहली कैशियो घड़ी डीडब्ल्यू–5000 मॉडल के बाद बाज़ार में कंपनी ने अपनी जगह बना ली. वक्त के साथ घड़ियों की श्रेणी में कैशियो ने शॉक रेसिस्टेंट घड़ियां बाज़ार में उतारीं और फिर डिजिटल वॉच का कॉन्सेप्ट भी प्रस्तुत किया. इसके बाद डिजिटल वॉच का जादू युवाओं के सिर चढ़ कर बोलने लगा. कंपनी के नए जी–शॉक रेंज में 1/1000 सेकेंड स्टॉप वाच, वेलोसिटी इंडीकेटर और मैग्नेटिक रेसिस्टेंस कॉम्प्लिएंट हैं. सात ब्राइट कलर्स में उपलब्ध इस रेंज की सभी घड़ियों में आसानी से इस्तेमाल हो सकने के लिए एंटी स्लिप फिनिश के साथ बड़े बटन दिए गए हैं और घड़ी के डायल पर महत्वपूर्ण माप के आंकड़े भी. बड़े आकार का डायल दिया गया है, जिससे ये आसानी से नज़र आ सकें. अन्य ख़ूबियों के साथ इस रेंज की घड़ियों में जीए–110 मॉडल 200 मीटर तक वाटर रेसिस्टेंट है. कैशियो पिछले पच्चीस वर्षों से भारत, चीन, जापान, साउथ कोरिया, हांगकांग, सिंगापुर समेत विश्व के लगभग 100 देशों में घड़ियों का उत्कृष्ट ब्रांड बना हुआ है. जी–शॉक घड़ी की यह ख़ास रेंज देश के सभी कैशियो आउटलेट्स, मल्टी ब्रांड और इलेक्ट्रानिक स्टोर्स में उपलब्ध है. इस रेंज की क़ीमत 6995 रुपये से शुरू होती है.

नहाना हो और मज़ेदार

रसोई और बाथ उत्पादों, इंजन एवं पावर जेनरेशन सिस्टम, इंटीरियर, लक्जरी हॉस्पिटैलिटी प्रोडक्ट्स का निर्माण करने वाली कंपनी कोहलर के 31,000 से भी ज़्यादा एसोसिएट छह महादेशों में फैले हैं. अमेरिकी कंपनी कोहलर भारत में अपना कारोबार बढ़ाने के लिए यहां के बाज़ार में पैर जमाने की कोशिश में आगे आई है. भारत में हर छोटे–बड़े शहर में पानी की समस्या है. ऐसा कई बार होता है कि आप बाथरूम में घुसे हों और शावर में पानी का प्रेशर कम होने की वजह से नहाने में मजा न आया हो. ऐसी ही समस्या से उबारने के लिए कोहलर ने ख़ास शावर हेड की नई रेंज लांच की है, जो पानी के फोर्स को बढ़ा देगी और नहाने का पूरा मजा दिलाएगी. इसे भारतीय बाज़ार में लांच करने के लिए बालीवुड अभिनेत्री बिपाशा बासु मौक़े पर मौजूद थीं. कोहलर ने इस रेंज में मैग्ना और एवरक्लीयर मॉडल पेश किए हैं, जो पानी के कम या ज़्यादा दबाव की स्थितियों में भी शानदार काम करते हैं. इनका अभिनव स्प्रे इंजन और आंतरिक वाटरवे डिजाइन हर बार शानदार शावरिंग का अनुभव देता है. इनमें एंटी लाइम स्केल नोजल, समकालीन स्टाइलिंग मल्टीपल स्प्रे फंक्शन और उत्कृष्ट क्रोम फिनिश शामिल हैं और इनमें फॉर्म व फंक्शन का ऐसा मेल है, जो पहले कभी नहीं रहा. इसकी क़ीमत 3200 रुपये से लेकर 5200 रुपये तक है, जिसमें डिलीवरी और इंस्टॉलेशन मुफ्त है. इस रेंज के शावर की कई ख़ासियतें हैं, जैसे निम्न और उच्च दबाव में शानदार प्रदर्शन, समकालीन स्टाइलिंग के साथ इंटीग्रेटेड डिजाइन और कई सारे स्प्रे फंक्शन. यह साफ करने में आसान है और इसे टाइल तोड़े बगैर बदला या फिक्स किया जा सकता है.

चौथी दुनिया ब्यूरो
feedback@chauthiduniya.com

विज्ञापन हेतु संपर्क करें : email : advt@chauthiduniya.com

दिल्ली में डेंगू का कहर जारी है, लेकिन अधिकारी दनादन प्रेस कांफ्रेंस करके यह बता रहे हैं कि नगर निगम ने डेंगू से लड़ने की तैयारी शुरू कर दी है.

डेंगू
बेहाल मरीज़, उदासीन सरकार

दिल्ली में डेंगू ने पैर पसार लिए हैं, लेकिन सरकार कहती है कि चिंता की कोई बात नहीं है. इस बुखार से लोगों की मौत जारी है और अधिकारियों का मानना है कि स्थिति नियंत्रण में है. हैरानी की बात यह है कि इस बात का पता सबको है कि बरसात के मौसम में डेंगू का कहर बरपता है, लेकिन हर साल हमारी सरकार एवं स्वास्थ्य विभाग डेंगू मच्छर से हार जाते हैं. चौथी दुनिया की तहक़ीक़ात से पता चला है कि दिल्ली के ओखला इलाक़े में पचास से ज़्यादा लोग डेंगू की चपेट में आ चुके हैं, लेकिन राजधानी के अस्पताल डेंगू के मरीजों को भर्ती करने से मना कर देते हैं. अगर उन्हें भर्ती भी किया जाता है तो डेंगू के बजाय दूसरी बीमारियों के नाम से रजिस्टर किया जा रहा है.

रीतिका सोनाली

ओखला में रहने वाली सिम्मी महज़ 22 साल की थी. सिम्मी की शादी के सपने संजोने वाले मां–बाप का सपना तब चूर–चूर हो गया, जब डेंगू ने उसकी जान ले ली. यहां के होली फैमिली अस्पताल में तड़प–तड़प कर सिम्मी की जान चली गई. बीमारी की शुरुआत हल्के बुखार से हुई. उसने बिना डॉक्टरी सलाह के बुखार और कमज़ोरी की दवा ले ली. जब हालत बिगड़ी, तब घरवालों ने उसे होली फैमिली अस्पताल पहुंचाया, लेकिन वहां इलाज के दौरान उसकी मृत्यु हो गई. मेहराब के साथ भी कुछ ऐसा ही हुआ. उसे पूर्व प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी के हाथों से ट्रॉफी मिली थी. यह होनहार बच्चा दुनिया को अपने हुनर से रोशन करने से पहले ही मौत के मुंह में चला गया. हल्का बुखार आने पर घरवालों ने उसे बुखार रोकने की दवा दी. जब मेहराब की स्थिति में सुधार नहीं आया तो उसे होली फैमिली अस्पताल में भर्ती कराया गया. उसे डेंगू ने जकड़ लिया था. इलाज के दौरान ही उसकी भी मौत हो गई. ऐसे ही दस वर्ष के अंदर के बच्चों, जीवन और शाहिद ने अपोलो जैसे बड़े अस्पताल में दम तोड़ दिया. जिन्हें जाना था, वे तो चले गए, लेकिन परिवावालों की मुश्किल तब और बढ़ गई, जब अस्पताल ने उन्हें डेंगू का ज़िक्र करने से मना कर दिया. दिल्ली के संजीवनी अस्पताल में भी डेंगू के कई मरीज भर्ती हैं, लेकिन अस्पताल प्रशासन ने इन मरीजों को डेंगू के नाम पर भर्ती नहीं किया, बल्कि ऐसे मरीजों को दूसरी हल्की–फुल्की बीमारियों जैसे सामान्य बुखार आदि का नाम देकर भर्ती किया जा रहा है.

मादा एडीज मच्छर : डेंगू का वाहक

एडीज इजिप्टाई मच्छर की वजह से डेंगू का संचरण होता है. एडीज मच्छर को काफी साहसी मच्छर कहा जाता है, क्योंकि यह अधिकांशतः दिन में ही काटता है. इसके काटने से डेंगू वायरस पैदा होता है, जिससे व्यक्ति को बुखार आ जाता है. इसे हड्डी तोड़ बुखार भी कहा जाता है, क्योंकि इसके कारण शरीर एवं जोड़ों में काफी दर्द होता है. यह एक संचारी रोग है, जो एडीज मच्छर के ज़रिए एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में फैलता है. इस मच्छर के काटने के तीन से पांच दिनों के बीच डेंगू बुखार के लक्षण प्रकट हो सकते हैं. यह संक्रमण काल तीन से 10 दिनों तक भी हो सकता है. वर्ष 1996, 2003 एवं 2006 में दिल्ली और उत्तर भारत के कुछ हिस्सों में यह बीमारी व्यापक रूप से फैली थी, जिससे कई मौतें हुई थीं.

डेंगू बुखार के प्रकार

डॉक्टरों के अनुसार, डेंगू का बुखार तीन तरह का होता है. साधारण डेंगू बुखार, डेंगू हेमरेजिक बुखार और डेंगू शॉक सिंड्रोम. साधारण डेंगू बुखार स्वयं ठीक होने वाली बीमारी है, लेकिन हेमरेजिक या शॉक सिंड्रोम हो तो उसका तुरंत उपचार किया जाना चाहिए, अन्यथा मरीज की जान को खतरा हो सकता है.

साधारण डेंगू बुखार के लक्षण

- ठंड लगने के साथ अचानक तेज़ बुखार.
- सिर, मांसपेशियों एवं जोड़ों में दर्द.
- आंखों के पिछले भाग में दर्द होना, जो आंखों के दबाने या हिलाने से और बढ़ जाता है.
- अत्यधिक कमज़ोरी लगना, भूख में कमी, जी मितलाना.
- मुंह का स्वाद ख़राब होना.
- गले में हल्का दर्द होना.
- शरीर पर लाल–गुलाबी रैशेज पड़ना.

डेंगू हेमरेजिक बुखार के लक्षण

- साधारण बुखार के लक्षणों के अलावा नाक, मसूढों, शौच, उल्टी में ख़ून आना इसके लक्षण हैं. इसकी वजह यह है कि शरीर में प्लेटलेट्स बनना काफी कम हो जाता है, जिससे ख़ून गाढ़ा होने की प्रक्रिया प्रभावित होती है. शरीर के किसी भी भाग से रक्तस्राव इसका प्रमुख लक्षण है.
- इसमें त्वचा पर गहरे नीले–काले रंग के छोटे या बड़े चकते भी पड़ जाते हैं.

डेंगू शॉक सिंड्रोम के लक्षण

- उपरोक्त दोनों लक्षणों के अलावा रोगी का अत्यधिक बेचैन होना.
- तेज़ बुखार के बावजूद त्वचा में ठंडक महसूस होना.
- रोगी का धीरे–धीरे होश खोना.
- रोगी का रक्तचाप कम होना.

उपचार

साधारण डेंगू बुखार होने पर पैरासिटामॉल की गोली या शरबत देकर बुखार को कम किया जा सकता है. रोगी को कभी भी डिस्प्रिन और एस्प्रिन जैसी दवाएं नहीं देनी चाहिए. यदि बुखार 102 डिग्री फारेनहाइट है तो पानी की पट्टी देकर उसका बुखार कम करें.

बचाव के उपाय

- घर के आसपास ऐसे टूटे–फूटे बर्तन न रहने दें, जिनमें पानी इकट्ठा हो सके.
- पानी की टंकी का ढक्कन बंद करके रखें.
- गमलों की नियमित सफाई करें.
- कूलर का पानी प्रतिदिन बदलें अथवा पानी में मिट्टी का तेल डालें.
- मच्छरों का लार्वा पनपने से रोकने के लिए खुली नालियों की नियमित सफाई कराएं और गड्ढों के पानी में मिट्टी का तेल डालें.
- शरीर को पूरी तरह से ढकने वाले कपड़े पहनें.
- रात में मच्छरदानी लगाकर अथवा शरीर को ढक कर सोएं.

राजधानी के विभिन्न इलाक़ों में ऐसे कई मामले देखने को मिल रहे हैं. आम लोगों में डेंगू की दहशत दिखने लगी है और बुखार के लक्षण दिखते ही लोग अस्पतालों की ओर दौड़ रहे हैं. एक अनुमान के मुताबिक़, इन दिनों अस्पतालों की ओपीडी में डेंगू की शिक़ायत लेकर 10–12 मरीज़ रोज पहुंच रहे हैं. लेकिन जब बात सरकारी आंकड़ों की आती है तो गिने–चुने मामले ही पेश किए जा रहे हैं. दिल्ली सरकार के मुताबिक़ , अब तक डेंगू के सिर्फ़ सात मामले ही सामने आए हैं. असलियत यह है कि ओखला के जामिया नगर के शाहीन बाग इलाक़े में डेंगू महामारी का रूप ले चुका है. यहां हर तीसरे घर में एक आदमी डेंगू से जूझ रहा है. शाहीन बाग इलाक़े के रेजीडेंट वेलफेयर एसोसिएशन के अध्यक्ष रियाज नेता बताते हैं कि सरकारी और निजी अस्पतालों–क्लीनिकों में भर्ती मरीज़ों के इलाज की कोई गारंटी नहीं है. यहां तक कि परिजनों को मरीज़ के डेंगू से मरने का सर्टिफिकेट भी नहीं मिलता है. अस्पतालों, डॉक्टरों और प्रशासन की मिलीभगत से प्रमाणिक तौर पर डेंगू से हुई मौतों की संख्या दबाई जा रही है.

दिल्ली में डेंगू का कहर जारी है, लेकिन अधिकारी दनादन प्रेस कांफ्रेंस करके यह बता रहे हैं कि नगर निगम ने डेंगू से लड़ने की तैयारी शुरू कर दी है. दावा यह किया जा रहा है कि जून से ही निगम के सभी वार्डों में बैठकें जारी हैं. घर–घर जाकर ज़्यादा से ज़्यादा लोगों को जागरूक करने के लिए टीम बनाई जा रही है. इसके अलावा निगरानी के लिए एक विशेष टीम बनाई गई है, जिसमें सेनेटरी विभाग, जल बोर्ड, हॉर्टीकल्चर और आरडब्ल्यूए के प्रतिनिधियों को शामिल किया गया है. हर साल की तुलना में इस बार फॉगिंग करने वाले कर्मचारियों की संख्या भी दोगुनी कर दी गई है, जो मच्छरों को मारने के लिए हर इलाक़े में कीटनाशक दवाओं का छिड़काव कर रहे हैं. उधर ओखला और इसके आसपास के इलाक़ों के निवासी इन दावों को खोखला बताते हैं. हाल में ही डेंगू से उबरे ईनाम अहमद बताते हैं कि उन्होंने जाकिर नगर में आज तक किसी भी व्यक्ति को दवा का छिड़काव करते या लोगों को जागरूक करने वाले सरकारी नुमाइंदों को नहीं देखा है, जबकि इस क्षेत्र में डेंगू का प्रकोप सबसे ज़्यादा है. डेंगू के बारे में कम जानकारी होने की वजह से उन्होंने भी शुरू में बुखार के लिए सामान्य दवा ले ली और तकलीफ ज़्यादा होने पर अस्पताल गए. वहां टेस्ट के बाद उन्हें डेंगू का शिकार घोषित किया गया. ईनाम अहमद ख़ुशक़िस्मत थे कि इलाज के बाद ठीक हो गए, लेकिन कई ऐसे लोग हैं, जो जानकारी न होने की वजह से डेंगू में भी सामान्य बुखार आदि की दवा खाते रहते हैं और ऐसे ही दम तोड़ देते हैं या फिर अस्पताल जाने में इतनी देर कर देते हैं कि वहां से ज़िंदा वापस नहीं लौटते.

चौंकाने वाली बात यह है कि जिन संस्थाओं पर डेंगू से लड़ने की ज़िम्मेदारी है, वही डेंगू के स्रोत बन गए हैं. दिल्ली के बड़े–बड़े अस्पताल, बड़े–बड़े अधिकारियों एवं मंत्रियों के घर डेंगू मच्छरों के प्रजनन के अड्डों में तब्दील हो चुके हैं. इन सब को नोटिस जारी करके डेंगू मच्छरों की ब्रीडिंग रोकने के लिए कहा गया है. इन दिनों दिल्ली में राष्ट्रमंडल खेल के लिए जगह–जगह निर्माण कार्य चल रहे हैं, इसकी वजह से बारिश होने के बाद खुले क्षेत्रों में बने गड्ढों में पानी भर गया है. ऐसी जगहों पर मच्छर पैदा होने की आशंका ज़्यादा होती है, लेकिन सरकार और स्वास्थ्य विभाग ने इस संबंध में कोई कारगर क़दम नहीं उठाए, नतीजा डेंगू के रूप में सबके सामने है.

ritika@chauthiduniya.com

देश का पहला इंटरनेट टीवी

तीन महीने में रचा इतिहास

- हिन्दी की सबसे पॉपुलर वेबसाइट
- हर महीने 12,00,000 से ज़्यादा पाठक
- हर दिन 40,000 से ज़्यादा पाठक
- स्पेशल प्रोग्राम–भारत का राजनीतिक इतिहास
- समाचार–राजनीति, खेल, पर्यावरण, मनोरंजन
- संगीत और फ़िल्मों पर विशेष कार्यक्रम
- साई की महिमा

www.chauthiduniya.tv

एफ–2, सेक्टर–11, नोएडा–201301

Postal Regn. No. DL/ND-11/6139/2009-11, RNI No. 45843/86

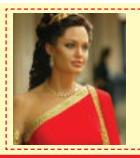

कई ख़ास मुद्दों पर फिल्में बना चुके डाइरेक्टर प्रकाश झा की अगली फिल्म में द्रौपदी के रोल के लिए उन्होंने हॉलीवुड की अभिनेत्री एंजलिना जॉली को पसंद किया है.

विदेशी बालाएं फ्लॉप होती अदाएं

प्रियंका प्रियम तिवारी

पिछले कुछ वर्षों से बॉलीवुड में विदेशी बालाओं का जादू निर्माता-निर्देशकों के सिर चढ़ कर बोल रहा है. चाहे उनका रोल नायिका का हो या आइटम डांसर का, हिंदी फिल्मों में उनको शामिल करना मानो एक मजबूरी सी बन गई है. हिंदी फिल्म इंडस्ट्री में लगातार होते प्रयोग के तहत अब इन विदेशी नायिकाओं को लीड रोल में भी लिया जाने लगा है. चाहे वह प्रकाश झा की राजनीति में रणबीर कपूर के साथ रोमांस करती सराह थॉमसन हों या काइट्स में रितिक की बाहों में झूलती बारबरा मोरी या श्रीलंकाई सुंदरी जैक्लीन फर्नांडीज. सलमान ख़ान का विदेशी सुंदरियों के लिए आकर्षण तो जगजाहिर है. लेकिन ये विदेशी बालाएं बॉलीवुड में सिवाए अपनी जिस्म के नुमाईश के कितना कमाल दिखा पाती हैं. आख़िर क्यों इनकी अदाएं फ्लॉप हो जाती है?

विदेशी बालाओं को दर्शक फिल्म में एक-दो बार तो मनोरंजन के नाम पर देख लेते हैं, लेकिन उससे अधिक नहीं. लैटिन सुंदरी बारबरा मोरी रितिक रोशन के साथ फिल्म काइट्स में काम कर चुकी हैं. फिल्म फ्लॉप रही, लेकिन उन्हें ख़ूब प्रचार मिला. ऑस्ट्रेलियन गायिका काइली मीनॉग अक्षय कुमार के साथ फिल्म ब्ल्यू में चिंगी-विंगी करती नज़र आईं. फिल्म फ्लॉप हो गई, लेकिन काइली भारतीय दर्शकों का प्यार पाकर ख़ुश हो गईं. हॉलीवुड अभिनेत्री डेनिस रिचर्ड्स फिल्म कमबख्त इश्क में अक्षय कुमार के साथ नज़र आईं. फिल्म देव डी से लाइम लाइट में आने वाली फ्रेंच सुंदरी कालकी कोएचलीन काफी अटेंशन बटोरने के बाद आजकल यंग स्टार इमरान ख़ान के साथ सॉफ्ट ड्रिंक के एड में नज़र आ रही हैं और बॉलीवुड में ख़ुद को स्थापित करने के लिए हाथ-पांव मार रही हैं. इसके जरिए वह भारतीय दर्शकों के दिल में अपनी जगह कायम करना चाहती हैं और बॉलीवुड में काम पाने की कोशिश भी कर रही हैं. अपहरण, गंगाजल, मृत्युदंड और राजनीति जैसी फिल्में बना चुके डाइरेक्टर प्रकाश झा के अगले प्रोजेक्ट में द्रौपदी के रोल के लिए एंजेलिना जोली उनकी पहली पसंद हैं. यही नहीं, कोलंबिया की पॉप सेंसेशन शकीरा मुंबई में 2007 में परफॉर्म कर भारतीय दर्शकों की वाहवाही लूटने के बाद अब रा.वन नाम की फिल्म में शाहरुख़ ख़ान के साथ काम करने वाली हैं. लब्बोलुवाब यह है कि केवल छोटे और मध्यम दर्ज़े की नहीं, बल्कि टॉप विदेशी बालायें भी बॉलीवुड में अपनी पहचान बनाने के लिए हाथ-पैर मार रही हैं. यही नहीं, फिल्म किसना में विवेक ओबरॉय के अपोजिट अभिनेत्री एंटोनियो बरनाथ नजर आईं. रंग दे बसंती में एलीस फॉरेन जर्नलिस्ट के रोल में नज़र आईं, जो भारत में डॉक्यूमेंट्री फिल्म बनाने के उद्देश्य से आती है और आमिर से प्यार करने लगती है. इस तरह के रोल के लिए इन सुंदरियों की ज़रूरत होती थी. अभिनेत्री अली लार्टेर सलमान ख़ान स्टारर फिल्म मैरीगोल्ड में कुछ ख़ास नहीं कर पाईं, जिसका उन्हें बेहद मलाल है. वहीं बरनाडे रोड्रीक फिल्म आउट ऑफ कंट्रोल में रितेश देशमुख की अमेरिकन पत्नी के रूप में नज़र आईं, पर यह फिल्म भी सुपर फ्लॉप रही. फिल्म लगान में अभिनेत्री रशेल सेली एलिजाबेथ के रोल में नज़र आईं. फिल्म तो हिट रही लेकिन एलिजाबेथ मानो अंग्रेजों के साथ ही भारत छोड़ कर चली गईं. दमदार आभिनय के बाद भी उन्हें बॉलीवुड में दुबारा मौक़ा नहीं मिल सका. साज़िद ख़ान की फिल्म हाउसफुल में भूतपूर्व मिस श्रीलंका और एक्ट्रेस जैक्लीन फर्नांडीज को आइटम डांस के लिए लिया गया. जैक्लीन पर फिल्माए गए लावारिस फिल्म के रीमिक्स आइटम डांस अपनी तो जैसे-तैसे पर दर्शक झूमते नज़र आए. इससे पहले वह फिल्म अलादीन में रितेश देशमुख और महानायक अमिताभ बच्चन के साथ नज़र आई थीं. अमेरिकन अभिनेत्री लिंडा अर्सेनियों जॉन अब्राहम के साथ फिल्म काबुल एक्सप्रेस में नज़र आईं. फिर आफताब शिवदसानी के साथ फिल्म आलू चाट के अलावा फिल्म मुंबई सालसा में भी नज़र आईं. उनके काम और ख़ूबसूरती को सराहा गया, लेकिन कोई विशेष चर्चा नहीं हुई. हिंदी फिल्मों में काम नहीं मिला तो लिंडा ने दक्षिण की ओर रुख़ कर लिया. वह मलयालम फिल्म हासी राजा में नज़र आईं. यही नहीं, क्षेत्रीय सिनेमा के अलावा विदेशी बालाएं इंडस्ट्री को अपनी मौज़ूदगी का एहसास दिलाते हुए टेलीविजन सीरियलों एवं रियलिटी शोज में बतौर प्रतियोगी और प्रोग्राम एंकर स्क्रीन पर आने लगी हैं. बॉलीवुड के पहले शोमैन राजकपूर ने सबसे पहले विदेशी अभिनेत्री को भारतीय सिनेमा से रूबरू कराया. उन्होंने अपनी फिल्म मेरा नाम जोकर को हिट बनाने के लिए रूसी सुंदरी सेनीया याबिनकिना को फिल्म में लिया था. पड़ोसी देश पाकिस्तान से तो कई अभिनेत्रियां आईं और बॉलीवुड में अपनी पहचान छोड़ गईं. हालांकि जिस तेजी से पाकिस्तानी सुंदरियां बॉलीवुड में आती हैं, उसी तेजी से वापस भी हो जाती है. फिल्म निक़ाह की सलमा आगा, हिना की ज़ेबा बख्तियार को शायद ही फिल्म देखने वाले भूले हों. अब तक यहां काम कर चुकी कई विदेशी अभिनेत्रियों का कहना है कि उन्हें अपने देश से ज़्यादा अटेंशन यहां मिलता है. उन्हें यहां की संस्कृति और रहन-सहन बेहद प्रभावित करता है. कई विदेशी अभिनेत्रियां तो बॉलीवुड में ही बने रहना चाहती हैं. वजह यह भी है कि छोटे देशों जैसे श्रीलंका, पाकिस्तान आदि की फिल्म इंडस्ट्री बहुत अधिक विकसित नहीं है, वहां की अभिनेत्रियां अपने करियर को सफलता के शीर्ष पर ले जाने के लिए बॉलीवुड में आती हैं. ब्राजीलियन ब्यूटी जीसेल मोंटेरियों और लव आजकल की हरलीन कौर कहती हैं कि उन्हें भारत से विशेष लगाव है. अक्सर लोग उन्हें लोग पंजाबी गर्ल समझ लेते हैं और इससे उन्हें बेहद ख़ुशी होती है. इंडस्ट्री का ग्लैमर उन्हें इस क़दर आकर्षित कर रहा है कि वे यहां पूरा-पूरा समय दे रही हैं. निगार ख़ान, याना गुप्ता, ब्रुना अब्दुला, कैटरीना कैफ ये चंद ऐसे ही नाम हैं. कैटरीना तो यहां की फिल्म इंडस्ट्री की स्थापित नायिकाओं में शुमार हैं. इनमें बीते जमाने की नेपाल मूल की अभिनेत्री मनीषा भी शामिल हैं.

एक साल में सबसे ज़्यादा फिल्में बनाने के लिए प्रसिद्ध बॉलीवुड ग्लोबल स्तर पर अपनी पहचान बनाना चाहता है. विषय और दृश्यों को कंटेपरेरी बनाने के लिए विदेशी लोकेशन में फिल्मों और गानों की शूटिंग से शुरुआत होकर फिल्म की पूरी कहानी ही विदेशी जीवनशैली पर आधारित बना दी गई. हिंदी फिल्मों के दर्शकों की संख्या भी पुरी दुनिया में बढती जा रही है. लेकिन फिर भी हमें इंतजार करना पड़ेगा उस वक्त का, जब बॉलीवुड में विदेशी बालाओं की अदाएं भारतीय दर्शकों का दिल जीत सकेंगी.

priyanka@chauthiduniya.com

बॉलीवुड के पहले शोमैन राजकपूर ने सबसे पहले विदेशी अभिनेत्री को भारतीय सिनेमा से रूबरू कराया. उन्होंने अपनी फिल्म मेरा नाम जोकर को हिट बनाने के लिए रूसी सुंदरी सेनीया याबिनकिना को फिल्म में लिया था. पड़ोसी देश पाकिस्तान से तो कई अभिनेत्रियां आईं और बॉलीवुड में अपनी पहचान छोड़ गईं. हालांकि जिस तेजी से पाकिस्तानी सुंदरियां बॉलीवुड में आती हैं, उसी तेजी से वापस भी हो जाती है.

प्रिव्यू

लाइफ एक्सप्रेस

आजकल की व्यस्त दिनचर्या में किसी के लिए वक्त निकालना बहुत मुश्किल है. गांवों और छोटे शहरों में तो फिर भी भागदौड़ कम होने की वजह से लोगों को कम से कम अपने परिवार के लिए वक्त निकालना आसान होता है, लेकिन बड़े शहरों और महानगरों की बात ही कुछ और है. वहां अपने काम के बाद परिवार के लिए समय निकालना ज़रा मुश्किल है. ऐसे ही दो अलग-अलग क्षेत्रों में रह रहे दो प्रेमी जोड़ों की कहानी है फिल्म लाइफ एक्सप्रेस. स्काई मोशन पिक्चर्स के बैनर तले बनी इस फिल्म की कहानी इंडस्ट्री में नए आए फिल्म मेकर अनूप दास ने लिखी है और उसका निर्देशन भी किया है. इससे पहले उनकी 30 मिनट की लघु फिल्म रिक्शा वाला कई देशी-विदेशी फिल्म समारोहों का हिस्सा बन चुकी है. उनकी वह फिल्म कलकत्ता के रिक्शावालों पर आधारित थी, जो हाथ से रिक्शा खींचकर अपना भरण-पोषण करने के लिए मजबूर थे. अनूप की यह फिल्म भी जीवन की कटु सच्चाइयों को अपने पात्रों के जरिए उकेरती है. यह फिल्म मातृत्व, प्रेम, प्रेरणा एवं सामाजिक दायरों में रहकर जीवन में चीजों एव रिश्तों को दी जाने वाली प्राथमिकता पर रोशनी डालती है. निजी फ़ायदे के लिए मानवीय संवेदनाओं की हर तरफ जो अनदेखी की जा रही है, उसका फिल्म में सटीक वर्णन किया गया है. फिल्म का निर्माण संजय कलाटे ने किया है. संजय अध्ययन-मनन से वास्ता रखते हैं और फिल्मों के शौकीन हैं. हालांकि फिल्म निर्माण की ओर उनका यह पहला क़दम है, लेकिन अपने रियल एस्टेट, ऑटो मोबाइल पार्ट्स के प्रोडक्शन एवं फाइनेंस के बिजनेस के बाद

उन्होंने अपने सपने को रंग दिया और स्काई मोशन पिक्चर्स की स्थापना की. वह हिंदी फिल्मों के अलावा क्षेत्रीय फिल्में बनाने में भी दिलचस्पी रखते हैं. ख़ुद ट्रैवलिंग के शौकीन संजय ने अपनी फिल्म प्रोडक्शन कंपनी में ऐसे दक्ष लोगों को नियुक्त किया, जो उनका सपना पूरा कर सकें. फिल्म लाइफ एक्सप्रेस शहर के एक ऐसे प्रेमी जोड़े की कहानी है, जो प्यार करते हुए भी अपना घर-परिवार वक्त की कमी के कारण नहीं बसा पाता. शहर में रहने वाली तन्वी (रितुपर्णा सेनगुप्ता) एवं निखिल (किरण जनजानी) दोनों प्रोफेशनल हैं और अपने करियर के प्रति काफ़ी सजग हैं. ऐसे में वे अपना परिवार बसाने के बारे में नहीं सोच पाते हैं और वक्त की कमी का रोना रोते हैं. वहीं इससे अलग शहर की भीड़भाड़ से दूर गांव में रहने वाले मोहन (यशपाल शर्मा) एवं गौरी (दिव्या दत्ता) प्रतिदिन की मुसीबतें साथ झेलते हैं और ख़ुश रहते हैं. उनके पास वक्त का अभाव नहीं होता और न इस वजह से होने वाले मनमुटाव होते हैं. दोनों युगलों की जीवनशैली पर बनी यह फिल्म जीवन के कटु सत्यों और व्यक्ति द्वारा अपने मन में बना ली गई धारणाओं पर अमल करके जीने की बाध्यता को प्रदर्शित करती है. फिल्म में इनके अलावा आलोक नाथ, नंदिता पुरी, दयाशंकर पांडे, अंजान श्रीवास्तव, मोहित चौहान एवं विजयेंद्र घाटके आदि हैं. फिल्म का संगीत उदित नारायण, श्रेया घोषाल, कल्पना एवं रूप कुमार राठौड़ ने दिया है. यह फिल्म 27 अगस्त को रिलीज होने वाली है. देखना यह है कि इस क्षेत्र में नए-नए आए फिल्म निर्माता अपना आइडिया रुपहले पर्दे पर प्रस्तुत कर पाने में कितना सफल होते हैं.

चौथी दुनिया ब्यूरो
feedback@chauthiduniya.com

चौथी दुनिया

बिहार झारखंड

दिल्ली, 16 अगस्त–22 अगस्त 2010

www.chauthiduniya.com

मेरी आवाज़ सुनो

सरोज सिंह

कांग्रेस के सम्मेलन में कार्यकर्ताओं के बीच हाथापाई क्या हुई, मानों उसके बाद तो इस तरह की होड़ सी चल पड़ी. बाद में यह नज़ारा भाजपा-जदयू के हर सम्मेलन में दिखने लगा. उधर राजनीतिक विश्लेषकों ने इसके दूसरे पहलुओं पर माथापच्ची शुरू कर दी है, लेकिन एक बात साफ़ है कि यह भाजपा-जदयू गठबंधन के लिए कतई अच्छा नहीं है.

अभी कुछ दिन पहले ही बिहार के एक प्रमुख दैनिक समाचारपत्र ने अपने पहले पन्ने पर दो तस्वीरें छापीं. पहली तस्वीर उस मौक़े की थी, जब नीतीश कुमार भाजपा के प्रदेश अध्यक्ष सी पी ठाकुर के निवास पर नाश्ते के लिए गए थे और दूसरी तस्वीर नवादा में कांग्रेस के सम्मेलन में हुई कथित मारपीट की थी. पहली तस्वीर की पंच लाइन थी जलवा, जबकि दूसरी में जलालत लिखा गया था. मुंगेर में आयोजित जदयू के सम्मेलन में शरद यादव की मौजूदगी में जमकर मारपीट हुई और काफी हंगामा मचा. उसके बाद मोतिहारी, नवादा, मुज़फ़्फ़रपुर, बक्सर और समस्तीपुर में आयोजित सम्मेलनों में भी कार्यकर्ता एक-दूसरे पर टूट पड़े. सीवान में तो नीतीश कुमार के कार्यक्रम में भी अव्यवस्था फैली. लखीसराय में सुशील मोदी की सभा भी बेदाग नहीं रही. मतलब जलवा जलालत में बदलता गया, पर इस समाचारपत्र की नज़र उस पर इस तरह नहीं पड़ी, जिस तरह कांग्रेस के नवादा सम्मेलन पर पड़ी थी. खैर, उनकी मर्जी, पर अगर जलवा से जलालत तक के सफर की कहानी को राजनीतिक नज़रिए से देखें तो चुनाव से ठीक पहले जदयू-भाजपा गठबंधन के लिए यह अच्छा शगुन नहीं माना जा सकता है.

विश्वास यात्रा के बाद जदयू की योजना ज़िला स्तर पर राजनीतिक सम्मेलन करके कार्यकर्ताओं को चुनाव के लिए तैयार करना था. पार्टी को उम्मीद थी कि चुनाव की घोषणा के ठीक पहले इस तरह के सम्मेलनों से अपने पक्ष में माहौल बनाने में मदद मिलेगी, लेकिन यह योजना उल्टी होती दिखाई पड़ रही है. मुंगेर में पार्टी के राष्ट्रीय अध्यक्ष शरद यादव की मौजूदगी में जो कुछ हुआ, उससे दूसरे ज़िलों में ग़लत संदेश गया है. इसका परिणाम यह हुआ कि समस्तीपुर, मुज़फ़्फ़रपुर, मोतिहारी और नवादा में कार्यकर्ताओं पर नियंत्रण रखने में वरिष्ठ नेता असफल रहे. यहां बहुत कुछ वैसा ही हुआ, जैसे कांग्रेस के कुछ सम्मेलनों में हुआ था. चुनाव की घोषणा से ठीक पहले इन घटनाओं की तह में जाएं तो दो प्रमुख बातों पर नज़र टिकती है. पहली यह कि नीतीश के पूरे कार्यकाल और अब टिकट वितरण की प्रकिया में समर्पित कार्यकर्ताओं की उपेक्षा और दूसरी यह कि लालू की टोली से अलग होकर नीतीश के हमसफर बने नेताओं को ज़्यादा तवज्जो मिलना. कार्यकर्ता ही नहीं, बल्कि दबी ज़ुबान से नीतीश सरकार के कई मंत्री भी यह बात कई दफा कहते रहे कि शासन में अफसरों का बोलबाला है. कार्यकर्ताओं एवं मंत्रियों की आवाज़ कोई नहीं सुन रहा. यहां तक कि मुख्यमंत्री भी उनकी बात नहीं सुन रहे हैं. थाने से लेकर अस्पताल तक जदयू के कार्यकर्ता ख़ुद को उपेक्षित समझते रहे. जदयू कार्यालय में मंत्रियों का दरबार कब लगा, कब बंद हो गया, किसी को पता भी नहीं चला. गांव एवं ज़िले से लेकर पटना तक उनकी आवाज़ सुनने वाला कोई नहीं था. जिस अरमान से उन्होंने नीतीश कुमार को सत्ता सौंपी थी, वह समय बढ़ने के साथ चूर होता चला गया. जिन कार्यकर्ताओं की नज़र बोर्ड एवं निगम पर थी, उन्हें भी निराश होना पड़ा. लालू विरोध में सड़कों पर डंडे भी खाए, लेकिन आलम यह रहा कि इन कार्यकर्ताओं को माया मिली न राम. टिकट की आस लगाए जदयू कार्यकर्ताओं को भी सकारात्मक संकेत नहीं मिल रहे हैं, इसलिए गुस्सा स्वाभाविक था.

मामला यहीं खत्म हो जाता तो कोई बात थी, पर लालू की टोली से अलग होकर जदयू में आए नेताओं के ठाठ ने पार्टी के समर्पित कार्यकर्ताओं का पारा सातवें आसमान पर चढ़ा दिया. शिवानंद तिवारी, मोनाजिर हसन, श्याम रजक, रमईराम, भोला सिंह एवं निहोरा यादव आदि न जाने कितने नाम हैं, जो आज जदयू में चांदी काट रहे हैं, जबकि संघर्ष के दिनों में नीतीश कुमार के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चलने वाले समर्पित कार्यकर्ता सड़क पर घूम रहे हैं. जदयू के राजनीतिक सम्मेलनों में ऐसे नेताओं के रुतबे से वर्षों से जुड़े कार्यकर्ताओं की भावनाओं को गहरी ठेस पहुंची. नतीजा मारपीट, हंगामा और हाथापाई के रूप में सामने आया. हालात बिगड़ते देख कुछ ज़िलों के सम्मेलन टाल दिए गए, लेकिन इन घटनाओं ने पार्टी के बड़े नेताओं को परेशान कर रखा है. इसी तरह भाजपा के भी कुछ सम्मेलनों में हंगामा हुआ. यह देखकर अनुशासित काडर वाली पार्टी होने का दावा करने वाली भाजपा भी दंग रह गई. लखीसराय में तो भाजपा के एक कार्यकर्ता के सवाल पर सुशील मोदी इतने नाराज़ हो गए कि उन्होंने उसे सभा से बाहर करा दिया. सभा के बाहर पुलिस ने उस कार्यकर्ता की जमकर पिटाई भी कर डाली. चुनाव से ठीक पहले कार्यकर्ताओं के गुस्से को राजग के नेता ठीक नहीं मान रहे हैं. इसलिए कोशिश यह हो रही है कि जल्द से जल्द कार्यकर्ताओं के गुस्से को ठंडा किया जाए.

जदयू के पूर्व प्रदेश अध्यक्ष एवं असंतुष्ट नेता ललन सिंह का मानना है कि जदयू के सम्मेलनों में जो कुछ हो रहा है, वह अस्वाभाविक नहीं है. ललन सिंह कहते हैं कि मैं तो इसी बात का दोषी हूं कि मैंने पार्टी में कार्यकर्ताओं के मान-सम्मान की बात उठाई. मैं इस बात के लिए लड़ा कि समर्पित कार्यकर्ताओं को उनका हक मिले, लेकिन जब मैंने देखा कि सत्ता शीर्ष पर बैठा आदमी कार्यकर्ताओं की बात नहीं सुन रहा है तो मैंने अध्यक्ष पद पर बने रहना मुनासिब नहीं समझा. सम्मेलनों में कार्यकर्ता अपने दिल की बात कहना चाहते हैं, पर जब उन्हें मौक़ा नहीं मिलता है तो हंगामा शुरू हो जाता है. ललन सिंह कहते हैं कि अपने मुख्यमंत्रित्व काल में नीतीश कुमार कार्यकर्ताओं का विश्वास जीतने में पूरी तरह असफल रहे और आने वाले चुनाव में उन्हें इसका खामियाजा भुगतना ही होगा. उधर जदयू के भोला प्रसाद सिंह का कहना है कि पार्टी के राजनीतिक सम्मेलनों में जो कुछ हो रहा है, वह ललन सिंह करा रहे हैं. भोला सिंह का कहना है कि जदयू एवं नीतीश कुमार के करिश्मे को ललन सिंह इन ओछी हरकतों से कम करना चाहते हैं. उनका मानना है कि जदयू के कार्यकर्ता पूरी तरह अनुशासित हैं और बिहार का विकास चाहते हैं. इस कारण नीतीश का दोबारा सत्ता में आना तय है. दूसरी तरफ कांग्रेस प्रवक्ता प्रेमचंद मिश्रा कहते हैं कि जदयू कोई पार्टी नहीं, बल्कि दलबदलुओं का एक गिरोह है. पहले इस गिरोह के लोग नीतीश कुमार की बात मानते थे, पर आज जब उन्हें लग रहा है कि नीतीश दोबारा सत्ता में नहीं आने वाले, तो वे राजनीतिक सम्मेलनों में अराजकता फैला रहे हैं. नवादा के कांग्रेस सम्मेलन में कोई मारपीट नहीं हुई, पर बात का बतंगड़ बना दिया गया. जदयू के कार्यकर्ता नीतीश कुमार से इतने नाराज़ हैं कि वे अपराधी जैसा आचरण कर रहे हैं. लोजपा के वरिष्ठ नेता एवं पूर्व सांसद रामचंद्र पासवान की राय है कि जदयू के राजनीतिक सम्मेलनों में हो रहा हंगामा नीतीश सरकार के पतन की झांकी है. बिहार की जनता एवं जदयू के समर्पित कार्यकर्ता नीतीश कुमार से तंग आ चुके हैं और आने वाले चुनाव में इस भ्रष्ट सरकार को उखाड़ फेंकने के लिए कमर कस चुके हैं. पासवान ने कहा कि लोजपा-राजद गठबंधन बिहार में अगली सरकार बनाएगा और सही मायनों में बिहार का विकास करेगा.

नीतीश कुमार लगभग अपनी हर सभा में जदयू कार्यकर्ताओं को चुनाव के लिए कमर कसने का फरमान सुना रहे हैं, लेकिन लालू-राबड़ी की सत्ता को उखाड़ने के लिए संघर्ष करते-करते एवं इन पांच सालों में राजनीतिक रूप से निराश और थानेदारों-इंजीनियरों की फटकार खाने वाले जदयू-भाजपा के कार्यकर्ता कितना दम-खम दिखा पाएंगे, यह तो आने वाला वक्त ही बताएगा. देखा जाए तो चुनाव से पहले जदयू एवं भाजपा के लिए एक नई मुसीबत सामने आ गई है. अब यह उनके नेताओं पर निर्भर करता है कि वे जलवा से जलालत के सफर को कैसे रोकते हैं.

feedback@chauthiduniya.com

जो कुछ हो रहा है, वह ललन सिंह ही करा रहे हैं. वह जदयू एवं नीतीश कुमार के करिश्मे को इन ओछी हरकतों से कम करना चाहते हैं.
-भोला प्रसाद सिंह

जदयू के सम्मेलनों में जो हो रहा है, वह अस्वाभाविक नहीं है. मैं तो इसी बात का दोषी हूं कि मैंने पार्टी में कार्यकर्ताओं के मान-सम्मान की बात उठाई.
-ललन सिंह

जदयू के राजनीतिक सम्मेलनों में हो रहा हंगामा नीतीश सरकार के पतन की झांकी है. बिहार की जनता एवं जदयू के समर्पित कार्यकर्ता नीतीश कुमार से तंग आ चुके हैं.
- रामचंद्र पासवान

जदयू कोई पार्टी नहीं, बल्कि दलबदलुओं का एक गिरोह है. पहले इस गिरोह के लोग नीतीश कुमार की बात मानते थे, पर आज जब उन्हें लग रहा है कि नीतीश दोबारा सत्ता में नहीं आने वाले, तो वे राजनीतिक सम्मेलनों में अराजकता फैला रहे हैं.
- प्रेमचंद मिश्रा

रामगढ़ ज़िले में भी कई ऐसे उद्योग हैं, जो सीसीएल से सस्ते दरों पर लिंकेज के माध्यम से कोयला प्राप्त कर बाज़ार में उसे ऊंची कीमतों पर बेचते हैं और इससे भारी मुनाफ़ा कमाते हैं.

विद्यालयों में आज उर्दू शिक्षा का हाल बेहाल है. राज्य में केवल प्राथमिक और मध्य विद्यालयों की संख्या लगभग 67,000 है.

उर्दू के साथ सौतेला व्यवहार

अशफाक असमानवी

बिहार में उर्दू की हैसियत दूसरी सरकारी ज़ुबान की है. यह सरकारी दस्तावेज़ का दावा है, लेकिन व्यावहारिक स्तर पर उर्दू बेमौत मरने की स्थिति में है. सरकार में बैठे लोग इसे अपने राजनीतिक उपयोग की चीज़ समझते रहे हैं. दुर्भाग्य यह है कि उर्दू ज़ुबान की समस्या को राज्य के मुसलमानों की समस्या के रूप में फोकस किया जाता रहा है. यह स्थिति पिछले दो-तीन दशकों से और गहरी हो गई है. सरकार या सदन, जहां कहीं भी उर्दू के पक्ष में कोई बात होती है, वातावरण उदासीन हो जाता है. वर्तमान परिस्थितियों में ऐसा लग रहा है कि कुछ दशकों के बाद यह भाषा सरकार की फाइलों तक ही सिमट कर रह जाएगी. इस दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति से उर्दू को उबारने के लिए इसके समर्थक अब सड़कों पर उतरने लगे हैं. निरंतर धरना-प्रदर्शनों के माध्यम से आवाज़ बुलंद होने लगी है. राज्य में उर्दू को दूसरी सरकारी ज़ुबान का दर्जा 1980 में कांग्रेसी शासनकाल में मिला था और उसके व्यावहारिक कार्यान्वयन की नींव भी कांग्रेसी मुख्यमंत्री डॉ. जगन्नाथ मिश्रा ने ही डाली थी. [illegible]

feedback@chauthiduniya.com

डूबे तो किस्सा ख़त्म, बचे तो ग़म ही ग़म

उत्तर बिहार के लोगों की ज़िंदगी बाढ़ से डूबते-बचते हर साल रिन्यूअल होती है. डूबे तो किस्सा ख़त्म, बच निकले तो अगली बाढ़ तक का जीवनदान. घर, अरमान, कमाई के साथ-साथ अपनों से बिछड़ने की आशंका. मानो हर वर्ष डूबना उनकी नियति बन गई है.

बाढ़ में डूब गए प्रशासन के वादे

कोसी नदी के घटते-बढ़ते जलस्तर ने तटबंध के अंदर निर्वासित ग्रामीणों को अभी से तबाह करना शुरू कर दिया है, लेकिन प्रशासन एवं जल संसाधन विभाग का रवैया इस क़दर ढीला है कि जैसे उन्होंने ठान ली है कि जब तक नदी के विकराल रूप धरने और लोगों के डूब मरने की नौबत नहीं आती है, तब तक वे बचाव, राहत एवं सुरक्षा कार्य शुरू नहीं करेंगे. कोसी नदी के पूर्वी तटबंध के अंदर बाढ़ के इस शुरुआती मौसम में ही सहरसा एवं सुपौल ज़िले के कई गांवों के लोग त्राहिमाम की स्थिति में जीवन गुज़ार रहे हैं. इन लोगों के समक्ष अभी से ही रहने और आवागमन की समस्या उत्पन्न हो चुकी है, परंतु प्रशासन अभी तक इनकी सुध लेने के लिए संबंधित लोगों को भेजना उचित नहीं समझ रहा है. आमतौर पर बाढ़ का समय 15 जून से शुरू हो जाता है. इसके साथ ही जल संसाधन विभाग एवं प्रशासन सुरक्षा की तैयारी में जुट जाता है, लेकिन इस बार ऐसा नहीं हो रहा है. जल संसाधन विभाग जहां तटबंध आदि के बहाने लूट की योजना बनाने में जुटा है, वहीं प्रशासन के लोग राहत सामग्री और कोष डकारने का इंतजाम करने में जुटे दिख रहे हैं.

सुपौल ज़िले के प्रखंड किशनपुर की पंचायत बौराहा का भेलवा टोला मानसून के पहले ही नदी की भेंट चढ़ गया. इस गांव के दर्जनों घर कोसी लील गई है. कोसी की कटान में अपना घर गवां चुकी आनंदी देवी, बूचो शर्मा एवं गणेश शर्मा आदि का कहना है कि हमें हर साल यह पीड़ा सहनी पड़ती है. घर कटने के बाद किसी प्रकार की सरकारी सहायता नहीं मिलती. सहायता के अभाव में तटबंध के अंदर रहने वाले लोगों की स्थिति दिनोंदिन बदतर होती जा रही है. इसी पंचायत के झखराही, डेंगा, सनपतहा, औरही एवं लछमिनिया आदि टोलों के लोग भी परेशानी से जूझ रहे हैं. सरायगढ़ प्रखंड के ढोली, बलसरवा, बनैनियां एवं सुजाननी आदि गांवों में कटान का ख़तरा मंडरा रहा है. बलसरवा निवासी दिलीप पासवान का कहना है कि कटान के ख़तरे को देखते हुए लोग अपने ज़रूरी सामानों के साथ ऊंचे स्थानों पर शरण लेने लगे हैं. नदी में जल वृद्धि और शादी-ब्याह के मौसम की वजह से यातायात की समस्या पैदा हो गई है. सरकारी नावों का परिचालन भी शुरू नहीं हो सका है.

सहरसा ज़िले के नवहट्टा प्रखंड क्षेत्र की असई पंचायत के महादलित टोला बरियाही मुसहरी के उपेंद्र सादा, दुलारचंद, चंदेश्वरी, गणेशी, सुखनी देवी, जगदेव, विद्या, मधिया देवी, बौकू, दिनेश, लक्ष्मण एवं श्रीलाल सादा के परिवार काफ़ी सहमे हुए हैं. पिछले साल श्याम, कारी, विजय, सैनी, बेचन, बद्री, भगवान, उपेंद्र, शीतो, चंदरराम, भूषणराम, लालदेव राम, उमेश राम, रंजीत राम, बालेश्वर राम, दिलीप राम एवं मुसनी देवी के घरों को नदी की तेज़ धारा बहा ले गई. इन परिवारों को आज तक घर नहीं दिया जा सका है. सहरसा ज़िले के नवहट्टा, महिषी, सिमरी बख्तियारपुर, बनमा इटहरी, सलखुआ एवं सोनवर्षाराज आदि इलाक़े हर साल बाढ़ का प्रकोप झेलते हैं. कुल मिलाकर यही कहा जा सकता है कि शायद प्रशासन और सरकार को लोगों के डूबने-मरने का इंतजार है.

एस सोनी/विपिन
feedback@chauthiduniya.com

बचाव के नाम पर बंदरबांट

तटबंध की मरम्मत की डेडलाइन ख़त्म हो चुकी है. जो भी काम हुआ, उस पर ग्रामीण खानापूर्ति का आरोप लगा रहे हैं. जहां काम नहीं हुआ है, वहां तटबंध खुला ही छोड़ दिया गया है. मिट्टी का काम ठीक से न होने से तटबंध जर्जर है और लोग ख़ौफ़ज़दा. प्रशासनिक स्तर पर रोज़-रोज़ आपदा प्रबंधन की बैठक हो रही है. चौकीदारों एवं होमगार्ड्स को तटबंध पर तैनात किया गया है. अनुमंडल एवं ज़िला मुख्यालय में कंट्रोलरूम बनाए गए हैं, जिनमें 24 घंटे कर्मचारियों एवं पदाधिकारियों की तैनाती की गई है. लाखों-करोड़ों ख़र्च हो गए हैं इस व्यवस्था पर, लेकिन तटबंध की समुचित मरम्मत के लिए फंड का रोना रोया जा रहा है. ये बाढ़ रोकने के उपाय हैं या बाढ़ मंगाने की तैयारी, समझ से परे है. बाढ़ आती है तो आश्वासनों की झड़ी लगा दी जाती है. एक आशा की किरण जगती है कि शायद अगले वर्ष बाढ़ से निजात मिल जाएगी, लेकिन सरकारी व्यवस्था ऐसी है कि बाढ़ से निजात दिलाने का आश्वासन सिर्फ़ एक घोषणा बनकर काग़ज़ों एवं फाइलों में सिमट कर रह जाता है. आश्वासनों एवं घोषणाओं की वास्तविकता कुछ और ही होती है. लगता है, लाखों की इस आबादी की किस्मत में अच्छे दिन देखना नहीं लिखा है.

बाढ़ प्रभावित क्षेत्रों में शुमार उत्तर बिहार एवं मिथिलांचल की हृदयस्थली कहलाने वाला समस्तीपुर ज़िला बाढ़ के लिए हाई रिस्क जोन के नाम से जाना जाता है. चारों तरफ़ से नदियों से घिरा यह ज़िला हर वर्ष बाढ़ के प्रकोप से घिर जाता है. बूढ़ी गंडक, करेह, कमला, बलान, कोसी एवं बागमती नदी के कहर की आशंका से आषाढ़, सावन एवं भादों माह में ज़िले के अधिकांश प्रखंडों की आबादी डरी-सहमी रहती है. इन नदियों के तटबंध टूटने से दरभंगा, समस्तीपुर, खगड़िया एवं बेगूसराय ज़िले की लाखों आबादी तबाह हो जाती है. इसके बावजूद बिहार सरकार के संबंधित विभाग द्वारा तटबंधों का समुचित ध्यान नहीं रखा जाता है. कटाव निरोधक कार्य के नाम पर लूटखसोट का सिलसिला लगभग तीन महीने तक जारी रहता है. बूढ़ी गंडक नदी, जो समस्तीपुर एवं बेगूसराय ज़िले पर कहर बरपाती है, का बायां तटबंध रोसड़ा राजेंद्र आश्रम, रहुआ एवं मसीना कोठी के समीप अत्यंत जर्जर है. इन स्थानों पर प्रत्येक वर्ष करोड़ों की लागत से निरोधात्मक कार्य संपन्न कराए जाते हैं. बाढ़ निरोधात्मक कार्य और तटबंध मरम्मत में विभागीय अभियंता, ठेकेदारों एवं बिचौलियों द्वारा लूटखसोट के अलावा कुछ और नहीं होता. जब नदी लबालब होती है तो कटाव निरोधात्मक कार्य के नाम पर भी पैसों का बंदरबांट होता है. इसी तरह करेह नदी पर हायाघाट से लेकर कराचीन तक 75 किमी तक दर्जन भर स्थानों पर तटबंध का कटाव नदी के सीध में रहने के कारण होता है. इन स्थानों पर प्रतिवर्ष कार्य कराए जाते हैं, जिन पर करोड़ों रुपये का ख़र्च होता है.वर्ष 2010-11 में हायाघाट-कराचीन तटबंध के 2.5 किमी पर पोराम के समीप 36 लाख रुपये की राशि ख़र्च कर मिट्टी का काम हुआ. इसी प्रकार 20.7 किमी पर महेशवारा के समीप 56 लाख रुपये ख़र्च कर ईंट क्रेजिंग, 22.8 किमी पर पुरनदाही के समीप 15.5 लाख रुपये, 24.90 किमी पर भटौरा के निकट 70 लाख रुपये, 28.4 किमी पर गंगौली के समीप 1.5 लाख रुपये से बोरा पीचिंग, 31 किमी पर परवना-तेलिनियागाछी के समीप 86 लाख रुपये, 35 किमी पर महोदवा के समीप 39 लाख रुपये, 36.48 किमी पर शंकरपुर के समीप 12 लाख रुपये, 40.8 किमी पर विशनपुर के समीप 3 लाख रुपये, 43.68 किमी पर कोलहट्टा के समीप 67 लाख रुपये एवं 52 किमी पर काले गांव के समीप 18.5 लाख रुपये के कार्य कराए गए हैं. इसके दूसरे तटबंध सिरसिया-सिरनियां पर भी कुछ इसी अंदाज़ में कार्य हुए हैं. नदी यदि लबालब हुई तो तटबंध का टूटना तय है. इस तटबंध पर मिट्टी का कार्य न होने को ख़तरनाक मानते हुए जल संसाधन विभाग के सहायक अभियंता रामचंद्र प्रसाद कहते हैं कि तटबंध कमज़ोर है और पूरे तटबंध को पांच फीट ऊंचा करने का प्रस्ताव भेजा गया है. कनीय अभियंता सीताराम अग्रवाल का कहना है कि सुदृढ़ीकरण का कार्य ज़रूरी है, इसलिए सरकार को प्रस्ताव पर जल्द अमल करना चाहिए. इस तटबंध पर प्रतिवर्ष 5 करोड़ रुपये व्यय किए जाते हैं, लेकिन बाढ़ की आशंका क्षेत्रीय लोगों को हमेशा सताती रहती है. इसके अलावा कमला, बलान एवं कोसी नदी का आंशिक प्रकोप ज़िले पर रहता है. सिंघिया, बिथान एवं हसनपुर प्रखंड इससे प्रभावित रहते हैं. इसी प्रकार बागमती नदी का हथौड़ी-त्रिमुहानी तटबंध, जो चार स्थानों पर 2007 से खुला हुआ है. यह ठाहर में 250 मीटर, हथौड़ी में 150 मीटर, मुरादपुर में 200 मीटर एवं गेरड़िया टोल में 100 मीटर खुला हुआ है.

जल संसाधन विभाग के सहायक अभियंता रामचंद्र प्रसाद कहते हैं कि तटबंध कमज़ोर है और पूरे तटबंध को पांच फीट ऊंचा करने का प्रस्ताव भेजा गया है. कनीय अभियंता सीताराम अग्रवाल का कहना है कि सुदृढ़ीकरण का कार्य ज़रूरी है, इसलिए सरकार को प्रस्ताव पर जल्द अमल करना चाहिए.

संजीव कुमार सिंह
feedback@chauthiduniya.com

जरा इस तस्वीर को देखिए. यह तस्वीर किसी विजयोत्सव की नहीं, बल्कि पूर्व सांसद अजीत सिंह की पुण्यतिथि पर आयोजित श्रद्धांजलि सभा की है. मंच पर नीतीश कुमार, मंत्री गिरिराज सिंह और दिवंगत सांसद की पत्नी एवं सांसद मीना सिंह के खिलखिलाते चेहरे को देखकर शायद आप यह सोचने लगे हैं कि सुशासन में कहीं बिहार में किसी महान विभूति की पुण्यतिथि मनाने का अंदाज तो नहीं बदल गया.

श्रावणी मेला

देवघर में दुकानों में ताले

श्रावणी मेले के दौरान देवघर के कुछ व्यापारियों का चेहरा ख़ुशी से खिल उठता है तो कुछ के लिए यह वक़्त छुट्टियां मनाने का होता है. शहर की दुकानों में पेड़े की बिक्री तो बहुत होती है, लेकिन यहां ऐसे भी दुकानदार हैं, जो इस दौरान अपनी दुकान में ताला लगा देते हैं.

श्रावणी मेले के दौरान देवघर में करोड़ों रुपये का कारोबार होता है. व्यापारी बेसब्री से इस सीजन का इंतज़ार करते हैं. आमतौर पर यह महीना देवघर के व्यापारियों के लिए काफी उत्साहजनक और फ़ायदेमंद होता है, लेकिन ऐसे व्यापारियों की भी कमी नहीं है, जो मेला शुरू होते ही अपनी दुकान में ताला लगाकर कहीं घूमने चले जाते हैं या फिर अपनी दुकान भाड़े पर लगा देते हैं.

यह भी कितनी अजीबोग़रीब बात है कि जिस सीजन का इंतजार कुछ व्यापारी वर्षपर्यंत करते हैं और जिसमें की गई कमाई से वे साल भर खाते हैं, उसी सीजन में कुछ ख़ास वस्तुओं का व्यापार करने वाले लोग कहीं बाहर घूमने चले जाते हैं. दरअसल इसके पीछे की कहानी भी काफी दिलचस्प है. श्रावणी मेले में बाबा धाम का प्रसाद जैसे पेड़ा, चूड़ी, इलायची दाना, चूड़ा, सिंदूर एवं लोहे के बर्तन के अलावा कुछ नहीं बिकता है. इसलिए कपड़े, जेवर, घरेलू सामान और तकनीकी एवं डिजिटल उपकरण बेचने वालों का धंधा ठप्प हो जाता है. इसके अलावा भी कई ऐसे कारोबार हैं, जिन पर मेले का असर पड़ता है, जैसे स्टेशनरी, प्लास्टिक और दूसरी छोटी-मोटी ज़रूरत की चीजें. इन सबकी बिक्री भी कम होने लगती है. इसलिए इन वस्तुओं के कारोबार से जुड़े लोग इस सीजन में अपनी दुकान पेड़ा अथवा अन्य दूसरी वस्तुएं बेचने वालों को किराए पर दे देते हैं, ताकि थोड़ी-बहुत कमाई होती रहे.

देवघर मंदिर रोड पर स्थित रेडीमेड कपड़ों के विक्रेता उमाशंकर प्रसाद बताते हैं कि इस सीजन में सिर्फ गेरुए रंग के कपड़ों की बिक्री होती है. सावन के महीने में प्रतिदिन मुश्किल से 200 से लेकर 400 रुपये तक की बिक्री होती है. गोल्डन अलंकार के श्रवण कुमार कहते हैं कि कांवड़िए दुकान के सामने से तो गुजरते हैं, लेकिन वे जेवर नहीं खरीदते.

दरअसल इस दौरान देवघर शहर में कांवड़ियों की भीड़ होती है. लाखों लोग इस दौरान यहां आते ज़रूर हैं, लेकिन उनके पास ख़रीददारी के लिए पैसे नहीं होते. कांवड़िए यहां सुल्तानगंज से पैदल आते हैं, इसलिए वे उतना ही पैसा लेकर चलते हैं, जिससे प्रसाद और घर वापसी के टिकट की व्यवस्था हो जाए. ज़्यादा पैसा लेकर चलना उनके लिए ख़तरे से खाली नहीं है, क्योंकि गेरुआ वस्त्र पहन कर इस भीड़ में चोरी करने वालों की कमी नहीं है. शहर में भीड़ इतनी ज़्यादा होती है कि स्थानीय लोग अपने घरों से बाहर तक नहीं निकल पाते. इन दुकानदारों के लिए राहत की बात यह है कि सावन बीतने के बाद भादो चतुर्दशी और तीज जैसे कई त्योहार आते हैं, जिससे सामानों की ख़रीददारी शुरू हो जाती है और बाज़ार में रौनक लौट आती है.

रीतिका सोनाली
ritika@chauthiduniya.com

सस्ता कोयला देने वालों पर कसा शिकंजा

सीसीएल द्वारा फ़र्ज़ी फैक्ट्रियों को लिंकेज के तहत सस्ते दामों पर कोयला आपूर्ति करने के मामले की जांच सीबीआई ने शुरू कर दी है. जांच से इस धंधे में शामिल उद्यमियों में खलबली मच गई है. इस संबंध में सीबीआई ने सीसीएल मुख्यालय के महाप्रबंधक (सेल्स) के ख़िलाफ़ न केवल मामला दर्ज किया है, बल्कि सीबीआई ने अधिकारियों के ठिकानों पर छापेमारी कर गड़बड़ी का पता लगाने की कोशिश शुरू कर दी है. सीबीआई की इस कार्रवाई से सीसीएल के विक्रय विभाग एवं कोयला कारोबारियों में खलबली मच गई है. हालांकि भ्रष्टाचार और अनियमितता के मामलों पर नज़र रखने और इस संबंध में कार्रवाई करने के लिए सीसीएल में अलग से निगरानी विभाग है, लेकिन उसकी निष्क्रियता के चलते ऐसे मामलों पर अब तक कोई कार्रवाई नहीं हुई. लिहाज़ा इस मामले को सीबीआई ने अपने हाथ में ले लिया. देश भर में कोयला आधारित उद्योगों को सीसीएल करीब 1200 रुपये मीट्रिक टन की दर से लिंकेज के माध्यम से प्रतिमाह एक निश्चित मात्रा में कोयला उपलब्ध कराती है. इस कोयले की कीमत खुले बाज़ार में दोगुने से भी अधिक है. ऐसे में सीसीएल के विक्रय विभाग के अफसरों की मिलीभगत से ऐसे उद्योगों को भी कोयले की आपूर्ति की जा रही थी, जिनका धरातल पर कोई अस्तित्व नहीं है. रामगढ़ ज़िले में भी कई ऐसे उद्योग हैं, जो सीसीएल से सस्ते दरों पर लिंकेज के माध्यम से कोयला प्राप्त कर बाज़ार में उसे ऊंची कीमतों पर बेचते हैं और इससे भारी मुनाफ़ा कमाते हैं, जबकि खदानों के अगल-बगल स्थित उद्योगों को कोयला नहीं मिल पाता. रामगढ़ स्थित झारखंड सरकार का बिजली संयंत्र कोयले के अभाव में दम तोड़ रहा है. रामगढ़ ज़िले के भुरकुंडा में स्थित देश के प्रथम शीशा उद्योग को लिंकेज से कोयला लेने में पसीने छूट गए, लेकिन फ़र्ज़ी फैक्ट्रियों के नाम पर इस धंधे से जुड़े लोग आसानी से कोयला प्राप्त कर रहे हैं. सीबीआई अभी सीसीएल के अधिकारियों की भूमिका की जांच कर रही है. जांच के दायरे में कई उद्यमी भी आ सकते हैं.

दस साल में पौने दो लाख कर्मी कम हुए

सार्वजनिक क्षेत्र की होल्डिंग कंपनी के रूप में वर्ष 1975 में अस्तित्व में आए कोल इंडिया लिमिटेड एवं उसकी सहायक कंपनियों के कर्मचारियों के सेवानिवृत्त होने से उनकी संख्या में तेज़ी से कमी आ रही है. पिछले दस सालों में कोल इंडिया एवं उसकी सहायक कंपनियों से 1,65,729 कर्मियों को निकाला गया. अप्रैल 2000 में कोल इंडिया एवं उसकी सहायक कंपनियों में 5,67,071 कर्मी थे, लेकिन अप्रैल 2010 में कर्मियों की संख्या घटकर 3,96,342 हो गई. सूत्रों के मुताबिक़, कोल इंडिया में हर वर्ष औसतन 16 हज़ार कर्मी सेवानिवृत्त हो रहे हैं या वीआरएस लेकर नौकरी से अलग हो रहे हैं. कोल इंडिया की एक प्रमुख सहायक कंपनी सीसीएल में पिछले दस सालों में 27 हज़ार कर्मी कम हुए हैं. सत्तर के दशक में जब कोयला उद्योग का सरकार ने अधिग्रहण किया था तो यहां कर्मियों की संख्या आठ लाख के करीब थी और देश में रेलवे के बाद कोयला उद्योग में ही सबसे ज़्यादा कर्मचारी थे. सरकारीकरण के समय ज़्यादातर कर्मी या तो सेवानिवृत्त हो गए या सेवानिवृत्ति के क़रीब थे, जिससे अनुमान लगाया जा रहा है कि आने वाले दिनों में कोल इंडिया एवं उसकी सहायक कंपनियों में कर्मचारियों की संख्या घटकर दो से ढाई लाख के बीच रह जाएगी. ऐसे में उत्पादन की गति बनाए रखने के लिए अतिरिक्त कर्मियों की ज़रूरत पड़ेगी. देश में ऊर्जा की बढ़ती ज़रूरतों को पूरा करना एक बड़ी चुनौती बन [illegible] संगठनों ख़ासतौर से वामदलों के संगठनों [illegible] सरकार अब कोयला उद्योग को निजी हाथ[illegible] साज़िश कर रही है. वैसे कोल इंडिया के विनि[illegible] की हरी झंडी मिल गई है. सरकार कोल इंडिया [illegible] हिस्सेदारी बेचेगी और इससे 12,000 [illegible] जुटाएगी. सब कुछ ठीकठाक रहा तो इस वर्ष सितंबर तक कोल इंडिया [illegible] जाएगा. हालांकि मज़दूर संगठन इसका जमकर विरोध कर रहे हैं. सरकार ने एक फीसदी शेयर कोल इंडिया एवं उसकी सहायक कंपनियों के कर्मियों के लिए सुरक्षित किए हैं और उन्हें पांच फीसदी छूट देने का भी ऐलान किया है. हालांकि कोल इंडिया के विनिवेश के बाद भी उसकी 90 फीसदी हिस्सेदारी सरकार के पास होगी, लेकिन मज़दूर संगठनों को आशंका है कि सरकार धीरे-धीरे कोल इंडिया को निजी हाथों में सौंप देगी.

नंद किशोर अग्रवाल
feedback@chauthiduniya.com

नया GISCO
Fe 500
THERMEX QST BARS
दुनिया GISCO लोहा माने

स्वतंत्रता दिवस के अवसर पर हार्दिक शुभकामनाएं
विष्णुकांत झा
वरीय भाजपा नेता
देवघर

चौधरी राईस मिल
वैद्यनाथपुर, देवघर

FOR 100% SUCCESS JOIN JUST
OXFORD ENGLISH CENTRE
FOR CLASSES C-1 & C-2
LATEST BASIC GRAMMER &
LATEST BASIC SPOKEN
V.I.P CHOWK, B.DEOGHAR

मगध प्रमण्डल के लोगों तथा इंटक के सभी साथियों को स्वतंत्रता दिवस की हार्दिक शुभकामनायें
गोपाल लाल महतो
मगध प्रमण्डल, गया (बिहार)
अध्यक्ष
राष्ट्रीय मजदूर कांग्रेस (इंटक)

Postal Regn. No. DL/ND-11/6139/2009-11, RNI No. 45843/86

चौथी दुनिया

दिल्ली, 16 अगस्त–22 अगस्त 2010

मधुबनी में पेंटिंग कला की यह परंपरा सात शताब्दी ईसा पूर्व से भी पुरानी है. सबसे पहले क्षेत्र के लोग दीवारों पर चित्रकारी करते थे.

मधुबनी पेंटिंग

सुशासन और बेहाल कला

कुमार सुशांत

क्रात्मक दृष्टिकोण से मधुबनी की पेंटिंग पूरी दुनिया में मशहूर है. अपनी कला की बदौलत रसीदपुर की स्व. गंगादेवी को पद्मभूषण अवॉर्ड से सम्मानित किया गया. उसके बाद जीतवारपुर की स्व. सीतादेवी समेत कई लोगों को इस सम्मान से नवाज़ा गया. हाल में गोदावरी दत्त और विभा दास को भी पुरस्कार दिया गया, लेकिन अफ़सोस की बात यह है कि मधुबनी में तैयार हो रही इन पेंटिंग्स का बाज़ार मधुबनी में ही नहीं है. यहां के कलाकार इन पेंटिंग्स को तैयार करने में रात-दिन एक कर देते हैं, लेकिन स्थानीय बाज़ार के अभाव में असल मेहनताना कलाकारों को कम, दलालों को ज़्यादा मिलता है. लालू यादव के शासन से ही स्वयं सहायता समूह बनाकर इन कलाकारों को क़र्ज़ दिलाने और स्वास्थ्य बीमा कराने की पहल की गई थी, लेकिन क़र्ज़ की प्रक्रिया इतनी जटिल थी कि किसी को भी क़र्ज़ नहीं मिल सका. वहीं सरकार के द्वारा स्वास्थ्य बीमा योजना के अंतर्गत केवल 3,000 कलाकारों का निबंधन किया गया, लेकिन उनमें से एक भी कलाकार को इलाज के बाद बीमे का पैसा नहीं मिला. कुछ लोगों को उनकी कला के लिए सम्मानित किया गया, लेकिन कलाकारों की संख्या एक-दो नहीं, बल्कि हज़ारों में है. सिर्फ़ कुछ चुनिंदा कलाकारों को लाभ देकर इस कला और इसके बाज़ार को बढ़ावा नहीं दिया जा सकता.

मधुबनी में पेंटिंग कला की यह परंपरा सात शताब्दी ईसा पूर्व से भी पुरानी है. सबसे पहले क्षेत्र के लोग दीवारों पर चित्रकारी करते थे. इसके साथ ही शादी एवं व्रत-त्योहार के मौक़ों पर भी चित्रकारी की जाती थी, लेकिन पिछले कुछ दशकों से बैग एवं कपड़ों पर भी पेंटिंग होने लगी है. कलाकारों के हाथों में कला तो है, पर उन्हें कहीं से कोई सहयोग नहीं मिलता. कलाकार शोभा देवी कहती हैं कि उनका परिवार सालों से इस व्यवसाय से जुड़ा है. उन्हें एक पेंटिंग बनाने में तीन-चार दिन लग जाते हैं. वह बताती हैं कि परिवार की रोजी-रोटी इसी कला पर टिकी है. वह बात करते-करते मायूस हो जाती हैं, कहती हैं कि इतनी मेहनत से अपने काम को अंजाम देने के बावजूद उन्हें पर्याप्त मेहनताना नहीं मिल पाता. शोभा के अनुसार, इलाक़े के व्यवसायी उनकी एक पेंटिंग 150-200 रुपये में ख़रीदते हैं और उसे बिचौलियों के माध्यम से विदेशों में महंगे दामों पर बेच दिया जाता है. शुरू में इस कला में ज़्यादातर महिलाएं दिलचस्पी लेती थीं, लेकिन समय बदला, मधुबनी पेंटिंग पूरी दुनिया में मशहूर हो गई. देखते ही देखते इसने व्यवसाय का रूप ले लिया और अब बड़ी संख्या में पुरुष भी इस कला में पारंगत हो गए हैं. मधुबनी के जीतवारपुर, रशीदपुर, राजनगढ़, मंगरौनी, सिमड़ी एवं चिचरी आदि इलाक़ों के ज़्यादातर लोग पेंटिंग्स बनाने के काम में लगे हैं. आंकड़ों के मुताबिक़, दरभंगा ज़िले के तकरीबन 25,000 से अधिक परिवार पेंटिंग्स व्यवसाय से संबद्ध हैं. मधुबनी और आसपास के क्षेत्र में कौन सांसद-विधायक बनेगा, यह फ़ैसला बहुत कुछ इन्हीं कलाकारों के मतों पर निर्भर करता है. वर्ष 2005 में राज्य में चली परिवर्तन की लहर के दौरान यहां की जनता ने ज़्यादातर एनडीए उम्मीदवारों पर भरोसा किया. इसी का नतीजा है कि मधुबनी संसदीय क्षेत्र के अंतर्गत आने वाली 10 विधानसभा सीटों में से 7 पर एनडीए उम्मीदवार विजयी हुए.

चुनाव के मौसम में यहां के कलाकारों की समस्याओं और उनकी रोजी-रोटी के संबंध में विभिन्न राजनीतिक दलों के नेताओं ने अनगिनत वादे किए, लेकिन उन पर आज तक अमल नहीं हो सका है. ख़ुद मुख्यमंत्री नीतीश कुमार कई मौक़ों पर मधुबनी पेंटिंग की तारीफ कर चुके हैं, लेकिन उनकी ओर से भी कलाकारों को सिर्फ़ उपेक्षा ही हाथ लगी. कारीगर राजेंद्र कहते हैं कि हम लोगों को नीतीश सरकार से काफी उम्मीदें थीं, लेकिन कोई फ़ायदा नहीं हुआ. राजेंद्र बताते हैं कि राज्य सरकार ने कई बार घोषणा की कि हर कलाकार अपने रोज़गार को आगे बढ़ा सके, इसके लिए उसे बैंकों से 40,000 रुपये तक क़र्ज़ मिलेगा, लेकिन क़र्ज मिलने की प्रक्रिया इतनी जटिल है कि इस योजना से पैसे या पहुंच वाले कलाकार ही लाभान्वित होते हैं. नीतीश सरकार स्वयंसेवी संस्था जीविका के माध्यम से स्वयं सहायता समूह बनाकर कलाकारों की स्थिति सुधारने की घोषणा कई बार कर चुकी है, लेकिन उसके कार्यकाल का साढ़े चार साल बीतने के बावजूद कोई भी घोषणा मूर्त रूप नहीं ले सकी.

मधुबनी पेंटिंग के नमूने को ग्लोबल इंडिकेशंस एक्ट फॉर पेंटिंग के तहत पंजीकृत किया गया है, लेकिन अंतरराष्ट्रीय स्तर पर मशहूर होने के बावजूद राज्य सरकार की लापरवाही के चलते इसे औद्योगिक मान्यता नहीं मिल सकी. ब्रिटेन एवं जापान में मधुबनी पेंटिंग्स का बहुत बड़ा बाज़ार है, जहां विदेशी इन्हें बड़े शौक से ख़रीदते हैं. अमेरिका में भी इसका बहुत बड़ा संग्रहालय बनने जा रहा है, लेकिन जहां इस कला का जन्म हुआ, जहां इसका वजूद है, वहां न तो इसका बाज़ार है, न कोई कीमत. इसके लिए दोषी केवल राज्य सरकार नहीं, केंद्र सरकार भी है. इसी का नतीजा है कि भारत सरकार के हस्तशिल्प विभाग जिसके 18 ज़िलों का कार्यालय मधुबनी में है, यह कार्यालय अस्तित्वहीन हो चुका है. हालात यह है कि विभाग को न तो फंड मिलता है, न कोई सहयोग. पूर्व केंद्रीय गृह मंत्री डॉ. शकील अहमद जब मधुबनी के सांसद थे तो उन्होंने भी घोषणा की कि 10,00,000 रुपये की योजना से संग्रहालय बनाया जाएगा, जिससे दूसरे देशों की तरह यहां भी इन कलाकारों को बाज़ार मिल सकेगा, लेकिन शकील अहमद की घोषणा चुनावी दौर में था. शकील अहमद संसदीय चुनाव हार गए. घोषणा भी ख़त्म हो गया.

मधुबनी पेंटिंग्स पूरी दुनिया में मशहूर हैं. ब्रिटेन, जापान एवं अमेरिका जैसे देशों में ख़ास तौर पर इसके संग्रहालय हैं और बाज़ार भी, लेकिन अफ़सोस की बात यह है कि जिस क्षेत्र से इसका वजूद है, वहां न तो इसका बाज़ार है और न ही किसी को कोई सरकारी सहायता मिलती है. कलाकारों का कहना है कि उन्हें नीतीश कुमार के सुशासन पर भरोसा था, लेकिन उन्होंने भी उनका भरोसा तोड़ दिया.

यहां के कलाकारों को उनके बेहतर कलाकारी के लिए पुरस्कारों से नवाज़ा भी जाता है. सम्मान प्राप्त करने की प्रक्रिया भी अलग है. सबसे पहले ज़िला उद्योग के माध्यम से चित्रकारी का चयन कर पटना भेजा जाता है. पटना से इसका चयन कर दिल्ली कलाकृति के पास उन पेंटिंग्स को भेजा जाता है. जहां एक्सपर्ट्स पेंटिंग्स का चयन कर पुरस्कार की घोषणा करते हैं. लेकिन सवाल है कि हज़ारों परिवार में से एक दो सम्मान देकर बाकि हज़ारों के पेट की आग शांत हो सकती है? एक कलाकार अपनी कला का प्रदर्शन करता है. लेकिन जब कलाकार की कला उसकी जीविका बन जाए, तो कला के प्रति उसकी उम्मीदें बढ़ जाती हैं. यहां भी कलाकार हर 5 साल बाद होने वाले विधानसभा चुनाव में उम्मीद लगाकर अपने प्रतिनिधि को चुनते हैं. लेकिन जब हर बार कलाकार को निराशा हाथ लगती है, तो कलाकार की कला भी प्रभावित होती है. सवाल नीतीश सरकार से है कि क्या इनके हर साल पेश होने वाले विकास रिपोर्ट कार्ड में कभी इन कलाकारों की कला का विकास होना शामिल नहीं हुआ?

kumarsushant@chauthiduniya.com

कुछ अलग करने की चाह

अभी तक यही सुना गया था कि भोजपुरी फिल्मों में बॉलीवुड और साउथ की हीरोइन भोजपुरी फिल्मों की तरफ़ पदार्पण कर रही हैं. पर अब यह बात काफ़ी पुरानी हो चुकी है. नगमा, रंभा और भूमिका चावला का ज़माना लद गया. अब इस इंडस्ट्री में कई नई और यंग तारिकाओं को मौक़ा दिया जा रहा है. इनमें से ज़्यादातर कलाकार छोटे पर्दे से ताल्लुक रखते हैं. इन्हीं में से एक कलाकार है रेशमी देसाई. जी हां आजकल भोजपुरी फिल्मों में इनके लटको झटकों की चर्चा ज़ोरों पर है. आपको बता दें कि रेशमी वही हैं जो कलर्स पर प्रसारित होने वाले कार्यक्रम उतरन की तपस्या की भूमिका से वाहवाही बटोर चुकी हैं. धारावाहिक की सफलता से उन्हें हाथो हाथ भोजपुरी फिल्मों के ऑफर मिले. इन्हें भुनाने के लिए पहले उन्होंने अपना नाम दिव्या देसाई से बदलकर रेशमी देसाई रखा. यह पैंतरा काम कर गया और अब इनके प्रशंसक इन्हें रेशमी के नाम से ही जानते हैं. अगर फिल्मों की बात करें तो अब तक उनके खाते में कई हिट फिल्में जुड़ चुकी हैं. *बलमा बड़ा नादान, कब होई गवनवा हमार, बंबई की लैला,छपरा का छैला, माई रे कब होई बिदाई हमार* जैसे नाम उनकी सफलता बयां करते हैं. पंकज केसरी के साथ फिल्म *शहर वाली जान मारे ली* में भी उनकी अदाकारी की जमकर तारीफ हुई. हालांकि इस बीच उन्होंने टीवी नहीं छोड़ा. धरावाहिक *परी हूं मैं* वह दोहरी भूमिका में नज़र आईं. लेकिन अब वह कुछ अलग करना चाहती हैं. उनके मुताबिक़ जिस तरह से भोजपुरी फिल्मों में नई नई तारिकाओं के आने का सिलसिला बढ़ता जा रहा है, ऐसे में यहां भी कम्पटीशन कम नहीं रह गया है. इसलिए यहां टिकने के लिए कुछ अलग करने की दरकार है.

चौथी दुनिया ब्यूरो
feedback@chauthiduniya.com